अब पाप निवृत्ति के लिए प्रार्थना सुनिए ।

इदमापः प्रवहत यत्किञ्चदुरितं मयि । यद्वाहमभि-
दुद्रोहयद्वाशेपउतानृतम् । ऋ० सं० अ० १ अ० २
व० १२ मं० १ अ० ५ सू० २३ मं० २२ ।

अर्थात् मुझ यजमान में जो पाप अज्ञान से हुआ है वा जो कुछ मैंने जान कर सब से द्रोह किया है वा जो किसी साधू को मैंने शाप दिया है वा जो मैंने झूठ बोला है इन सब पापों को हे आपः [जलो] मुझ से दूर करो ॥ २२ ॥ और भी देखिए—

इदमापः प्रवहतावद्यंचमलंचयत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतंयच्च
शेपे अभीरुणम् ॥ अ० वे० सं० कां ७ प्र० १७ अ० ८

अर्थात् हे जलो ! जो निन्दित मल मेरे शरीर में है और जो मैंने द्रोह किया है और जो मैंने झूठ कहा है और जो मैंने अपराधी को शाप दिया है इन सब पापों को मुझ से दूरकरो। और भी देखिये—ऋग्वेदका परिशिष्ट भाग,

यत्र गंगा च यमुना यत्र प्राची सरस्वती ।
यत्र सोमेश्वरो देवो तत्र मामामृतं कृधि ॥

अर्थात् हे सोम ! जहां गंगा है जहां यमुना है जहां सरस्वती है और जहां सोमनाथ हैं वहीं मुझे अमृत (अमर) कर ॥ और भी देखिये—

सितासितेसरितेयत्रसंगते तत्राप्लुतासोदिवमुत्पतंति ।
येवैतन्वां३विसृजंति धीरास्तेजनासोअमृतत्वंभजन्ते॥

अर्थात् जहां श्वेत और कृष्ण [गंगा यमुना] नदियें मिलती हैं उस स्थान में [प्रयागराज में] स्नान करनेवाले पुरुष स्वर्ग को जाते हैं, और जो लोग वहां शरीर छोड़ते हैं वे अमर होते हैं ॥ और भी—

इदंते अन्याभिरसमानमद्भिर्याः काश्चसिंधुंप्रवहंतिनद्यः ।
सर्पोजीर्णामिव त्वचं जहाति पापं स शिरस्कोभ्युपेत्य ॥

अर्थात् हे सिन्धो ! यह तेरा जल उन नदियों के समान नहीं है जो कि तेरे में गिरती हैं किन्तु उनसे उत्तम है, इसमें सिर समेत गोता लगाने से पुरुष पाप को ऐसे छोड़देता है जैसे सांप जीर्ण त्वचा को छोड़ता है ॥ फिर मनुजी ने भी तीर्थों से पाप दूर होना लिखा है कि—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैषहृदिस्थितः ।
तेनचेदविवादस्ते मागंगां माकुरूनूगमः ॥
मनु० अ० ८ श्लो० ९२

यम वैवस्वत देव जो तेरे हृदय में स्थित हैं यदि उनके साथ तेरा विवाद नहीं है, अर्थात् अधर्म्म करने के कारण भय नहीं है तो गंगा और कुरुक्षेत्र के जाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु तीर्थों पर जाकर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये सो सुनिये ॥

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेरण्येवनेपिवा ।
नदीनां वापिसंभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥
मनु० अ० ४. ८ श्लो० ३५६

अर्थात् जो पुरुष तीर्थ, वन, और नदी संगम में पराई स्त्री को बुलावे सो संग्रहण (सहस्र पण दण्ड) को पावे ॥ महाशय ! यदि आप यथार्थ दृष्टि से विचारें तो निःसन्देही मनुजी के वाक्यों में श्रीगंगा, कुरुक्षेत्र तीर्थ और नदी संगम आदि पदों से प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि यह सब तीर्थक्षेत्र मनुजी के समय से भी प्राचीन हैं ॥

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से निस्सन्देह हमारे प्राचीन तीर्थों में त्रिविध [मानसिक, वाचिक और कायिक]पापों की निवारक शक्ति का प्रमाण मिलता है, और प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होरही है, अब आप लोग सरल स्वभाव और सत्य प्रभाव से निष्पक्षपात होकर विचारें कि केवल कपोल कल्पित कुतर्क वाग्जाल के विना हमारे शुद्ध सनातन वेदानुकूल तीर्थ विषय की कितनी गूढता है अतएव अब सनातन धर्मानुरागियों को उचित है कि अपने परम

धर्म्म तीर्थ सेवन पुण्य् कर्म से कदापि विरत न हों। किसी की उक्सावट में आकर अपने धर्म्म से वंचित हो लोक परलोक से निराश हो अमूल्य रत्न शुद्ध चातुर्वर्ण्य जन्म को खोकर हाथ धोते रहजायँ। तीर्थों का फल ऐसे पुरुषों को मिलता है--

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्चकीर्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १ ॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टोयेनकेनचित्।
अहंकारनिवृत्तश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥
अकलंकोनिरारम्भो लघ्वाहारोजितेंद्रियः।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यः सतीर्थफलमश्नुते ॥ ३ ॥
अक्रोधनश्चराजेन्द्र सत्यशीलोदृढव्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥ ४ ॥

अर्थात् जिसके हाथ पैर और मन भली प्रकार से नियम में स्थित हैं, और जिस में विद्या तप और कीर्त्ति है, वही तीर्थों के फल को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ प्रतिग्रह को छोड़कर थोड़े में सन्तुष्ट रहनेवाला, और जो अहङ्कार रहित है, वही तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ कलंक रहित कर्त्तव्य हीन, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय, तथा जो मनुष्य पाप रहित है वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्रोधहीन, सत्यशील, दृढ प्रतिज्ञा वाला तथा सम्पूर्ण प्राणियों में जो अपनी समान देखता है. वही तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रियवर ! कैसे शोक की बात है, कि आजकल के असंस्कृत मूर्ख सभ्याभिमानी उन हमारे प्राचीन तीर्थों के माहात्म्य को अपनी प्रमाण शून्य युक्तियों में उड़ाना चाहते हैं, परन्तु मित्र ध्यान रहे पींजरे में पड़े हुए विकराल सिंह को यदि कोई खिजावै तो ऐसा करने से क्या सिंह का अपमान हो सकता है। हमारा सनातन धर्म मलीनावस्थामें होने पर भी कभी नष्ट नहीं होसक्ता) अन्त में हमारी सहृदय सज्जन पुरुषों से प्रार्थना है कि

आलस्य को त्यागकर अपने सनातन धर्म में तत्पर होजाओ। और अपने वर्ण के अनुसार कर्मों को करो॥

महामहोपदेशक गोविंदराम जी शास्त्री।

❋ सनातनधर्म की महिमा ❋

हे नाथ शरणं देहि मां भक्तं शरणागतम्।
सर्वाद्य सर्वनिलय सर्वबीज सनातन॥
सर्वाधार गिराधार साक्षिभूत परात्पर।
दुष्पारासार संसार कर्णधार नमोऽस्तुते॥

हे प्रिय सभासदो! मैं आप के सन्मुख जिस गहन और महान् विषय पर व्याख्यान देनेवाला हूँ, उस विषय में प्रवेश करने के लिए मैं, आज केवल भूमिका मात्र धर्म-सम्बन्धी कई प्रकरणों को लेकर उन्हीं के विषय में संक्षेप के साथ कुछ कहूँगा।

इस सभा रूपी बगीची में जनसमूह रूप भिन्न २ सुगन्धित पुष्पलताओं पर विहार करनेवाले सुख रूपी पक्षी का मनोहर शब्द सुनकर मनोरूप माली प्रेमाश्रुओं से सींच रहा है ऐसी दशा देख कर मैं भी हरिनाम रूप जल को छिड़क कर उस बगीचे को अधिक प्रफुल्लित करने का उद्योग करता हूँ एकबार भक्ति के साथ कहो—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

पहले इस आर्यावर्त में सनातन धर्म सब प्रकार से जागरहा था, सब लोग बड़े धर्मात्मा और निष्ठावान् थे, अधर्म को प्रवेश करने का किंचिन्मात्र भी अवसर नहीं मिलता था। उस समय युधिष्ठिर नल मान्धाता दिलीप आदि धार्मिक शिरोमणि राजे प्रजापालन में तत्पर रहते थे और वसिष्ठ वामदेव आदि महर्षि भी धर्म को जागृत रखने में और उसकी

वृद्धि करने में रातदिन तंत्पर रहते थे। जैसे किले में के राजमहल की उत्तमता से दृढता की जाती है तैसेही सनातनधर्म रूपी महल, उपरोक्त धर्मात्मा राजे और महर्षि आदिकों से सुरक्षित था। परन्तु वह दशा उलट कर कालवश क्षय होते २ इस समय किसी अतिजीर्ण महल की समान उस धर्म रूप महल की दुर्दशा होरही है कहीं २ पुरानी गिरी पड़ी दीवारें रहगई हैं। यदि कहो कि–वह दीवारें कौनसी हैं? तो सुनिये हमारे पवित्र और विद्वत्ता से भरे हुए बचे बचाये धर्म ग्रन्थ हैं। हमारा प्राचीन पुस्तकों का भाण्डार इतना बलिष्ठ था कि––औरङ्गजेब बादशाह ने हमारे ग्रन्थ-भण्डार को जला देने की आज्ञा दी तो छः मास तक बराबर ग्रन्थों के जलते रहने पर भी वह निबड़ा नहीं, अन्त में जो ग्रन्थ बच गए उनका बहुमूल्यपना इतना है कि–वह जगत् भरके अन्य मनुष्यों के ग्रन्थों को और विद्याओं को अब भी नीचाही दिखावेगा। नवीन फिलासफर (तत्वज्ञानी) भी उन ग्रन्थों में की एक पंक्ति को बांचकर चकित होजाते हैं और 'हमारी बुद्धि काम नहीं देती' ऐसा स्पष्ट कह देते हैं, अस्तु यह जो हीन दशा प्राप्त हुई है यह हमारे धर्म का बुढापा है। जैसे मनुष्य को बालकपन, तरुणाई और बुढापा आता है तैसेही धर्म के विषय में भी समझना चाहिए, तिस पर कलियुग महाराज की अमलदारी!! जिस प्रकार बुढ़ापे में मनुष्य की गर्दन कांपने लगती है, तैसे ही इस धर्म की भी गर्दन कांपने लगी है, अर्थात् यदि कोई हमसे बूझें–ब्रह्मचर्य्य कैसी क्या वस्तु है? तो अँहः (नहीं) सूचित करने के लिए गर्दन हिलने लगती है। सत्य नहीं, धैर्य्य नहीं, क्षमा नहीं, अहिंसा नहीं इन सबही शब्दों के साथ गर्दन हिलाई जाती है, यही धर्म के बुढापे का चिह्न है परन्तु ऐसी दशा होजाने के वास्तविक कौन २ कारण हैं, यह खोज करना हमारा कर्त्तव्य है। यद्यपि उन सब कारणों के वर्णन में बहुत समय लगेगा परन्तु सबसे बडा कारण संस्कृत की अवनति है। संस्कृत ही हमारे धर्म ग्रन्थों और अनेकों शास्त्रों की उस समय की भाषा है तथा जगतभर की सभी भाषायें इसके ही शब्दों का

उच्चारण बिगड़ते २ बनगई हैं, ऐसा कहना कोई अनुचित बात नहीं है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द कहते हैं उनसे इस बात का निश्चय होजायगा।

संस्कृत	लाटिन	अङ्गरेजी	पर्शियन	जर्मन्	ग्रीक
मातृ	मेटर्	मदर्	मादर्	मातेर्	मातेर्
पितृ	पेटर्	फादर	पिदर्	पातेर्	पिटर्

इसी प्रकार—

संस्कृत	लाटिन	अङ्गरेजी	पर्शियन
सुवन	सन्	सन	....
दुहितृ	....	डाटर	दुखतर

संस्कृत	अरबी
अङ्कवर	अकबर
अंतकाल	इंतकाल

इसी प्रकार—

संस्कृत	अङ्गरेजी
सर्प	सर्पेंट
पथ	पाथ
त्रिपथ	ट्रायपेड्

संस्कृत	पर्शियन
अस्ति	अस्तं
नास्ति	नेस्त
किमस्ति	कीस्ती

इसी प्रकार और भी अनेकों शब्दों की समता दिखाई जासकती है। परन्तु उतना अवकाश न होने से आगे को चलते हैं।

ऐसे सूक्ष्म रीति से देखने पर जगत्भर की सकल भाषाओं की जननी निःसन्देह यह संस्कृत ही है। मूल स्थान भारतवर्ष से उसका प्रचार जैसे २ दूर देशों में होता गया तैसे तैसे उसका अपभ्रंश होकर उसके द्वारा और लोगों की भाषा बनती गई, यह दशा होते हुए भी जिनको इस संस्कृत की गन्धभी नहीं मिली है वह इसको डेड लैंगवेज [मृत भाषा] और मूर्ख लोगों की भाषा है ऐसा कहते हैं और इस में ऐसेही विचार भरे होंगे ? इस प्रकार कहकर तिरस्कार करते हैं। संस्कृत सीखना मानो भीख मांगने की विद्या सीखना है, वह तो हरामडील भिखमँगों को पढनी चाहिए, हमको उससे क्या लाभ है ? ऐसी वृथा बकवाद करते हैं। परन्तु रत्न के मोल को कूँजड़ा क्या जाने ? मित्रों !

केवल शब्दों की समताही नहीं है, किन्तु अनेकों नए शास्त्र भी इस ग्रन्थ से ही लिए गए हैं, यह बात ग्रन्थों से और व्यवहार से स्पष्ट समझ में आजायगी। सूर्य की ऊष्णता से पानी की भाफ बनकर उसके मेघ होकर फिर वर्षा होती है यह खोज नवीन नहीं है, किन्तु उपनिषद् में कहाहै।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।'

जिस विद्युत्शास्त्र ने आजकल सब जगत् को चकित कर डाला है, उसका प्रचार पहिले हमारी ओर ही था, यह बात एक छोटे से उदाहरण से आप समझ सकेंगे। उत्तर हिन्दुस्तान में जब बरसात आती है तब बादलोंमें बिजली चमकने लगती है तब साधारण दासी भी आंगन में पड़े हुए कांसी आदि धातु के पात्रों को शीघ्रता से उठाकर घर को लेजाती है। धातु में बिजली गिरकर घुसजाती है यह बात हमारे यहां की तुच्छ दासियों को भी मालूम है, तात्पर्य यह है कि-नई चलाई हुई मालूम होनेवाली अनेकों विद्याएँ पहिले हमारे पास थीं परन्तु अब पूर्वोक्त कारण से ग्रन्थों का नाश होजाने पर वह सब स्वप्न की समान होरही हैं।

जैसे ग्रन्थों की और संस्कृत की ऐसी अधोगति होगई तैसे ही हमारी गुरु शिष्य प्रणाली भी बिगड़ गई है। आजकल अधिक तो क्या, बहुत से गुरुनामधारी भी इस बात को नहीं जानते कि-सन्ध्या प्राणायाम आदि शास्त्रानुकूल किस रीति से करने चाहिये बस केवल नाक कानको हाथ लगाया सो प्राणायाम होगया ! ! जब गुरुओं की यह दशा है तो शिष्यों की तो बात ही क्या ? हां कभी कहीं सच्चे गुरु मिल भी जाते हैं, परन्तु दिनोंदिन गृहस्थों की श्रद्धा घटती जाने के कारण उनसे भी दोनों को कुछ लाभ नहीं पहुंचता। उत्सव त्योहार आदि के समय किसी वेश्या का, आने के विषय में तार आया कि-कोई गाड़ी भेजता है, कोई सेवक भेजता है और आंजानेपर अञ्जीर, अंगूर, अनार, सन्तरे, केला,

आम, पकवान आदि की तश्तारयें नजर करके बार २ प्रश्न किया जाता है कि--कहिए सरकार आपकी तबियत कैसी है ? और उनहीं के पास कहीं से यदि गुरुवर्य का आने के विषय में तार या पत्र आवे तो सब नाक सकोड़ने लगते हैं। यदि गुरु महाराज आही जांय तो उनको किसी घुड़साल, गोशाला या कबूतरखाने में ठहरा देते हैं और कहीं से आये हुए सड़े पड़े फल अर्पण कर देते हैं यदि गुरुजी ने बूझा तो कहदिया कि--महाराज आप परमहंस हैं आपको भला बुरा क्या ? जहां ऐसी दशा हो तहां धार्मिक उन्नति की क्या आशा है ?।

ऐसी दशा होते हुए भी हम हिन्दुओं की स्त्रियों में अब भी धर्म का अंश अधिक है, यद्यपि आजकल के नवशिक्षित लोग हिन्दुओं के घरों की लक्ष्मी स्वरूपिणी ऐसी स्त्रियों को अज्ञान में पड़ी हुई समझते हैं परन्तु सनातनधर्म के मतसे यह अज्ञान नहीं है उदाहरण देखिए, एक हिन्दूनारी प्रातःकाल के समय उठकर पति की सेवा करके पति की आज्ञानुसार गंगा तटपर स्नान करने को जाती है स्नान के अनन्तर श्रीगंगा का पूजन करके सिन्दूर, अगर, कुंकुम को गंगा का प्रसाद जानकर अपने भाल में लगाय उसको सौभाग्य दर्शक चिह्न समझती हैं। तदनन्तर पीपल के वृक्ष में सिन्दूर की बिन्दी लगाकर आम के वृक्ष पर टीका काढती है, फिर चलते २ गौ मिलती है तो उसके सिन्दूर का टीका लगाती है, तदनन्तर खेत में हल से खुदे हुए ढेले के टीका लगाती है, जहां चौराहा होता है तहां सिन्दूर चढाती है, तदनन्तर अपने घर आकर कौलोंपर और दीपक रखने के स्थान पर तथा पलहुण्डी पर टीका लगाती है, जरा विचार कर देखो इन सब वस्तुओं पर टीका लगाने का प्रयोजन क्या है ? सनातन धर्म का जो रहस्य है कि--ब्रह्म सर्वत्र समभाव से प्राप्त है, यही स्त्रियों के उस कार्य से दिखाया गया है, इतनाही नहीं किन्तु सिंदूर, अगर कुंकुम यह स्वामी के विद्यमान होने के चिह्न हैं, तिसी प्रकार जगत भर का स्वामी इन सब काठ पाषाण आदि वस्तुओं में ओतप्रोत भररहा है ऐसा जो

१ सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि। २ ईशावास्यमिद ० सर्वं यत् किंचित्०। ३ तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।

इत्यादि श्रुतियों को मथकर निकाला हुआ अर्थ है, उसको हिन्दू स्त्रियें भिन्न २ वस्तुओं पर कुंकुम का टीका लगाकर प्रकट करती हैं।

ऐसा उपदेश और तदनुसार आचरण इन दोनों पर अमल केवल सनातन धर्म में ही देखा गया है इस कारण यह अन्य सब धर्म्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सनातन धर्म में वृक्ष पशु आदिकों की पूजा कही है उसको बहुत से भिन्न धर्मी मूर्खता बताते हैं, परन्तु ऐसा कहने वालों ने सनातन धर्म का रहस्य कुछ भी नहीं समझा है, वृक्ष पशु आदि की पूजा करना मूर्खता नहीं है। किन्तु सनातनधर्म का महत्व दिखाने वाला उदाहरण है। क्योंकि देखो-दूध, दही, माखन, मलाई आदि से बालकों से लेकर बूढ़ों पर्यन्त उपकार करनेवाली परममित्र गौ की पूजा करने के लिये जैसी सनातनधर्म में आज्ञा है तैसेही प्राणघातक परमशत्रु सर्प की भी श्रावण-शुक्ला पञ्चमी को पूजा करने की आज्ञा दी है। इस प्रकार 'समः शत्रौ च मित्रे च' इस उच्च तत्त्व का केवल उपदेश ही नहीं किया है, किन्तु तदनुसार प्रत्यक्ष आचरण भी सनातन धर्म ने दिखाया है, ऐसे उदार उपदेश और आचरण का फोटो क्या और किसी धर्म में ढूंढने से भी मिलसकता है? कदापि नहीं। इससे सनातन धर्म की योग्यता, व्यापकता और महत्ता को सब सहज में ही समझ सकते हैं। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, इसका यथार्थ विचार जिस में है ऐसा एक सनातनधर्मही है, इसको अन्यधर्मी लोग तथा हम में के सुधारक चाहे जो कुछ कहें परन्तु ईश्वर की यथार्थ व्यापकता के रहस्य को एक सनातन धर्मियों ने ही समझा है।

हमारे अठारह पुराण हैं और वह मानों पृथ्वीपर के प्रत्यक्ष प्रमाणोंकी समान ही १८ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, वह किसी विशेष कारण से सत्तरह या उन्नीस नही रचे गये हैं, इस बात को हम और किसी समय बिस्तार के साथ कहेंगे॥

सनातनधर्म में भक्ति को परम तत्त्व माना है, परन्तु गुरु शिष्य भाव की प्रणाली बिगड़ जाने के विषय में मैं आप से पहिले ही कहचुका हूँ उसके बिगड़ने से जैसा योगमार्ग का लोप हुआ है तैसाही भक्तिमार्ग का भी लोप होगया। गुरु की कृपा से और सत्समागम से ईश्वर की ओर को लौ लगकर भक्तिरस का द्वार कैसा खुलजाता है और फिर अनन्य भक्ति करने लगने पर, सङ्कट के समय श्यामसुन्दर प्रभु अपना दर्शन देकर कैसी सहायता करते हैं इस विषय में उदाहरण रूप परम भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी का चरित्र संक्षेप से कहता हूं॥

तुलसीदासजी का निवासस्थान बांदा जिले के राजापुर ग्राम में था और इन के पिता उधर के तहसीलदारी के काम पर थे और उन्होंने बहुतसा धन सञ्चय करा था,। इन की माता का नाम तुलसी था, दुर्दैववश तुलसीदासजी के पिता इनको सात आठ वर्ष का बालक छोड़ कर परलोक को सिधार गये इकलौता पुत्र और लाड़ला होने के कारण १५। १६ वर्ष की अवस्था तक यह निरक्षर ही रहे, तदनन्तर एक श्रेष्ठ कुल की कन्या के साथ इनका विवाह होगया। स्त्री के परमरूपवती होने के कारण तुलसीदासजीका ध्यान रातदिन उधर को ही लगा रहता था। आठों पहर उसके पाससे हिलते भी नहीं थे पिता का इकट्ठा कराहुआ धन खर्च होगया, सोता खुला होतो जल का हौज कबतक भरा रहसकता है, तुलसीदास जी के ऐसे स्त्री में आसक्त होने के कारण उनकी माता को बड़ा खेद हुआ और पुत्र को व्यापार धन्धा, नौकरी चाकरी आदि करने के लिये बहुत कुछ समझाया परन्तु तुलसीदासजीके ध्यान में एक भी बात नहीं आई और उलटा यह उत्तर दिया कि—तूहीं हम दोनों का पालन कर, ऐसा उत्तर सुनकर माता चित्त में दुःखित होती हुई मौन हो बैठी। पांच छः वर्ष ऐसेही बीत जाने पर बहू को लिवाने के लिये उसके पीहर से मनुष्य आये, उनको तुलसीदास ने निषेध करके लौटा दिया और स्पष्ट उत्तर दे दिया कि—मैं अपनी स्त्री को नहीं भेजूंगा, इस पर उन की माता ने कहा कि—प्रातःकाल के समय तुलसीदास एक घण्टे तक स्नान

आदि नित्य क्रिया करने को यमुनाजीके तटपर जाया करता है उस समय तुम डोला लेआना, मैं बहू को बिदा करदूँगी। दूसरे दिन जब तुलसीदास स्नान आदि करने के लिये यमुना जी को चले गये, उसी समय उनकी माता के कहने के अनुसार तुलसीदास की सुसराल वाले आकर बहू को लिवा लेगये। इधर तुलसीदास जी स्नान आदि से निबटकर कन्धे पर धुली हुई धोती हाथ में जलकी झारी और एक पीताम्बर पहिने हुए आये सो पहिले तो उन्होंने घर में सर्वत्र देखा, परन्तु जब स्त्री घर में कहीं न दीखी तब माता से बूझा उसने नीहर के भेजदेने का वृत्तान्त सुनाया, इस बातको सुनते ही तिसी प्रकार नङ्गे धड़ङ्गे कन्धे पर धोती डाले और हाथ में जलकी झारी लियेही सासके घरको चलदिये, उनको इस बात का कुछ ध्यान नहीं था कि-मैं मार्ग में नङ्गा ही किस दशा में जारहा हूँ और सपाटा लगाये हुए श्वशुर के घर की ओर को चलदिये। उन को प्रेम रूपी रस्सी ने ऐसा जकड़ कर बांध लिया था कि-लोक लज्जा और प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। परन्तु इस निष्कपट प्रेम को देखकर परमदयालु भक्तवत्सल श्यामसुन्दर परमात्मा ने दयालु अन्तः-करण में विचार किया कि इसका ऐसा यह निष्कपट प्रेम यदि मुझमें होजाय तो इसका कितना उपकार हो! अच्छा तो इसके इस प्रेम को अब अपनी ओर खेंचकर इसके ऊपर अनुग्रह करूँ, इधर तो भगवान् का ऐसा सङ्कल्प हुआ, उधर तुलसीदासजी के श्वशुर के घर पहुँचतेही, तहां सास आदि सब ने जामाता की ऐसी दशा देखकर विचारा कि-यह जो ऐसे नङ्गे ही चले आये हैं सो इनकी माता बूढी थी वह कहीं परलोक को तो नहीं सिधारगई! इस कारण लोक रीति के अनुसार वह सब अपने नेत्रोंमें आंसू भर लाये। इधर तुलसीदास जीने भी देखा कि मुझे देखतेही इनके नेत्रों में आंसू भर आये, सो कहीं मेरी प्रिय स्त्री का तो कुछ अशुभ नहीं हो गया? ऐसा मन में विचार कर रोने लगे, इस प्रकार एकायक रोदन मच जाने पर दासी ने इनकी स्त्री को भी खबर करदी, वहं तो पति की हानिकारक अति रूपा शक्ति

को जानती ही थी सो उसने बात को छुपाने के लिये अपने माता पिता से कहला भेजा कि-मेरे पति को कभी २ ऐसा उन्माद हो जाता है तब वह ऐसेही नंगा रूप बनाए फिरते रहते हैं, अतः इसमें दुःखित होने की कुछ बात नहीं है, यह वृत्तान्त जान श्वशुर ने जामाता को वस्त्र आदि देकर घरमें स्त्री के समीप जाने की आज्ञा दी, तुलसीदासजी ने देहली में पैर रक्खा कि-भगवान् की करुणा रूप उस स्त्री ने उसी समय निषेध करके समझाया कि हे स्वामिन्! आप मेरे लिये इतना कष्ट सहकर और लोक लज्जा तथा प्रतिष्ठा को त्यागकर आये हो, परन्तु यह तुम्हारा प्रेम यदि परम कृपालु, भक्तवत्सल, श्यामसुन्दर, कमलनेत्र धनुर्धारी श्रीरामचन्द्र जी में लगा होता तो कितना उत्तम और अक्षय सुख का देने वाला होता! नाथ! मेरा यह सुन्दर दीखने वाला शरीर वास्तव में देखो तो मल मूत्र से भरा हुआ है, नाक, कान, मुख आदि में अनेकों प्रकार का मल है। और शरीर में भी हाड़ मास रुधिर के सिवाय और क्या रक्खा है? इस कारण ऐसे तुच्छ मलिन और नाशवान् मेरे शरीर पर के प्रेम को आप श्यामसुन्दर श्रीरामचन्द्र जी की ओर को अवश्य लगाओगे, मुझे यह दृढ़ आशा है! इतना उपदेश मय कथन सुनते ही तुलसीदास जी के विचार के नेत्र खुले और वह शान्त हो कर तत्काल मञ्जिल दरमञ्जिल चलते २ काशी जी में आकर मणिकर्णिका पर ठहरे। घाट पर पड़े हुए हैं, बराबर मुख में से राम राम की धुन लगरही है और श्यामसुन्दर का दर्शन पाने के लिये किसी महात्मा को गुरु करने की उत्कट इच्छा होरही है, इतनेही में नरहरि स्वामी प्रातःकाल का स्नान सन्ध्या करके लौटे हुए आश्रम को जारहे थे, उन्होंने हृदय द्रावक राम नाम की रटना को सुनकर समझा कि-यह कोई आर्त्त और प्रेमी पुरुष है, तत्काल समीप में गये और वृत्तान्त बूझा। तब तुलसीदास जी ने आद्योपान्त अपनी सब कहानी सुनाई और प्रार्थना करी कि-इस शरीर को भगवान् श्याम सुन्दर का दर्शन कराने के विषय में यदि आप निश्चय दिलाते हैं, तब इस शरीर

को रखता हूँ, नहीं तो अभी गङ्गार्पण करे देता हूँ यह सुनकर नरहरि स्वामी ने विचारा कि-जब भक्त के नेत्रों में प्रेमाश्रु आजाते हैं तब परम कारुणिक परमातमा अवश्यही सुध लेते हैं, फिर यह तो अत्यन्त आतुर औरं सकल शरीर अर्पण करने को उद्यत होरहा है तो क्या इसको भगवत्प्राप्ति नहीं होगी ? ऐसा विचार कर कहने लगे कि—उठ, कुछ चिन्ता न कर, इस जन्म और इसी शरीर में ही तुझको दर्शन होगा। तदनन्तर गुरु के चरणों पर मस्तक रखकर उनकी टहल सेवा करते हुए तुलसीदासजी ने ५। ६ वर्ष में उत्तम रीति से वेद शास्त्रादि पढ़े और परम अनुरागरूप भक्ति का साधन किया। एक दिन नाव में बैठकर नित्यक्रिया करने के निमित्त गंगा के परलेपार गये तहां शौचक्रिया से निवट कर शेष बचे जलको फेंक देने पर उस अपवित्र जल से एक पिशाच की तृप्ति हुई, तब उसने आग्रह करके कहा कि—मुझ से कुछ सोना-हीरा-मोती आदि धन मांगो, तुलसीदास जी ने कहा कि मुझको धन की आवश्यकता नहीं है, यदि शक्ति होतो मुझको श्री श्याम सुन्दर भगवान् का दर्शन कराओ, पिशाचने कहा-यह तो मुझसे होना कठिन है परन्तु मैं तुमको एक उपाय बताता हूं, उसके अनुसार कार्य करिये निःसन्देह आप की इच्छा पूरी होगी। वह उपाय यह है कि-आजकल गंगा तटपर वाल्मीकी रामायण की कथा होती है, तहां श्रोताओं में एक ओर को, जिस का शरीर कोढ़ से गलरहा है ऐसा पुरुष आकर बैठता है, कथा समाप्त होने पर तुम उसके चरण पकड़ लेना छोड़ना मत, बस वह तुम्हें श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करादेगा। तिसी प्रकार तुलसीदास जी कथा समाप्त होने पर उसके पीछे २ जाने लगे, कुछ देर में नगर के बाहर पहुँचने पर उस कोढी पुरुष ने बूझा कि-तुम मेरे साथ क्यों आते हो ? तुम को क्या चाहिये ? और मुझ ऐसे पुरुष से क्या मिलसकता है ? तब तुलसीदास जी ने चरण पकड़ कहा कि-महाराज ! मुझे श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करा दीजिये,तब उस कोढी ने यह समझ कर कि-अब यह मेरा पीछा नहीं छोडेगा, तत्काल कोढी का रूप त्यागकर अपना साक्षात् रूप धारण कर

लिया, वह साक्षात् पवनकुमार हनुमान् जी थे उन्होंने तुलसीदास के पूर्व भक्तिभाव और दृढ निश्चय को जानकर ढाढस दिया, कि--तुमको श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन होगा इसमें कुछ सन्देह न समझो और जब मेरा स्मरण करोगे तब मैं भी तुमको दर्शन दूंगा। तिसके कुछ दिन पीछे तुलसीदास जी गंगातटपर रामायण की रचना करते समय लेखनी कान में रखकर कुछ विश्राम ले रहे थे उसी समय गंगा के परलेपार घोड़ेपर सवार एक श्यामसुन्दर मूर्त्ति को देखा परन्तु चकित होकर मनमें विचारा कि यह कोई राजकुमार है, तदनन्तर वह मूर्त्ति तहां ही अन्तर्धान होगई इसके अनन्तर और कुछ दिन बीतने पर तुलसीदास जी सोचने लगे कि-देखो इतने दिन बीतगये परन्तु अभी तक श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन नहीं हुआ और चित्त में अकुलाकर पवनकुमार की स्तुति कर के स्मरण किया सो उसी समय हनुमान जी प्रकट हुए, तुलसीदास जी ने हाथ जोड़ कर विनय करी कि-भगवन्! क्या कारण है जो आपने अभी तक दर्शन नहीं कराया तब महाबीर जी ने कहा कि-अमुक दिन गङ्गा के परले पार घोड़े पर सवार श्यामसुन्दर की मूर्ति प्रकट हुई थी फिर तुम नहीं कैसे कहते हो, तब तुलसीदास ने किसी राजपुत्र का सन्देह होना निवेदन करके बड़े करुणास्वर से परमात्मा की प्रार्थना करी कि-हे श्यामसुन्दर! परमकृपानिधे! मैं कैसा अभागा हूँ कि आपने स्वयं दर्शन दिया परन्तु मुझे आपके दर्शन का पूर्ण लाभ नहीं हुआ मेरे रोम रोम में पाप भरा है परन्तु हे दीनबन्धो! आपने अजामिल आदिका उद्धार करा है और शरणागत को नहीं त्यागते हो ऐसा वेद शास्त्र कहते हैं, सो हे कृपासिन्धो! मैं आपके चरणों की शरण में आया हूं इसलिये आप मुझे दर्शन देकर मेरा उद्धार करो॥

तब महावीरजी ने उनको हृदय से लगाया और समझा बुझाकर कहा कि तुम धीरज धरेरहो, फिर साक्षात् दर्शन होनेका अवसर आवेगा। अब तुम चित्रकूट को जाओ और तहां प्रभुकी इसीप्रकार सेवा करते रहो बस थोड़ेही दिनों में श्यामसुन्दर भगवान् का दर्शन होगा। तिसी प्रकार

चित्रकूट पर जाकर तुलसीदासजी को प्रभु सेवा करते हुए बहुत दिन बीत गए परन्तु दर्शन होने का अवसर न आया एकदिन चन्दन घिस रहे थे कि अन्तःकरण प्रभुके दर्शन करने के लिए आकुल व्याकुल होगया और नेत्रों में से आंसुओं की धारा चलने लगी। जब योगी संन्यासियों को काठ की माला के दाने फिराने से प्रभुके दर्शन का योग प्राप्त होता है तब जो अपने आंसूरूपी दानों की माला को फेर रहा है इसको क्या प्रभु अपना दर्शन न देंगे? ऐसे असीम प्रेम को जान कर भगवान् श्यामसुन्दर के मनमें करुणा का प्रवाह बहने लगा और अब इस भक्त शिरोमणि का अन्त देखने का समय नहीं है ऐसा विचारकर तत्काल आठवर्ष के बालक का परम मनोहर रूप धारकर तुलसीदासजी के समीप आये और बाबाजी कहकर उनको नमस्कार करा तथा पास बैठ गए। तुलसीदासजी उस सुन्दर बालस्वरूप को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु फिर सन्देह ग्रस्त होजाने के कारण तथा मन को व्याकुलता होने से उचित ध्यान नहीं हुआ। तब तो महावीर जी को चिन्ता हुई कि क्या यह सुअवसर भी योंही जायगा? इस कारण आप तोता बनकर समीप के वृक्षपर बैठ गए, इधर बालरूपी श्रीरामचन्द्रजी ने तुलसीदासजी से बूझा कि—बाबाजी मैं अपने हाथ से तुम्हारे चन्दन लगादूं क्या? तुलसी दासजी ने कहा अच्छा, उसी समय प्रभु श्यामसुन्दर अपने कोमल हाथों से उनके मस्तक पर चन्दन लगाने लगे, तब तोते के रूप में बैठे हुए हनुमान् जी ने कहा कि—

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलकदेत रघुबीर॥

ऐसा कहने पर भी तुलसीदास का ध्यान उधर को नहीं गया तब फिर इस दोहे को पढा तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा बाबाजी अब मैं तुम्हें दर्पण दिखाता हूँ दर्पण दिखाते में तुलसीदासजी को भगवान् श्यामसुन्दर की तेजस्वी अँगुलियें दीख गईं और इधर शुकरूप हनुमान जी ने उस दोहे को तिसरा कर पढा तब तो तुलसीदासजी को ज्ञान हुआ कि—यही

साक्षात् श्यामसुन्दर कमलनेत्र भगवान् श्रीरामचन्द्र जी हैं और प्रार्थना करके साक्षात् दर्शन का दिव्यसुख पाया। सार यह है कि श्रीनरहरिस्वामी के उपदेश से तुलसीदासजी का भक्तिरस कैसा बढा जिस से वह परमप्रेमी भक्त बनकर प्रभु से मिल गये इसमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। तथा अपने प्रेमी भक्त के लिए परमदयालु परमात्मा का अनेकों रूपों में अवतार होता है यह भी प्रकट होगया।

आजकल के सायन्टिफिक [शास्त्रज्ञ] पुरुषों को यह असम्भव प्रतीत होगा परन्तु आत्मा क्या है और सन्ध्या, प्राणायाम भक्ति आदि साधनों से आत्मा की उन्नति करके परब्रह्म की प्राप्ति किस प्रकार होती है, यह बात मैं अपने दूसरे आख्यान में कहूँगा। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

स्वामी हंसस्वरूप।

❋ ब्रह्मविद्यासे सन्ध्याका सम्बन्ध ❋

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यञ्च परञ्च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

हे प्रिय सभासद् गण ! सनातनधर्मरूपी रेलगाड़ी, सभारूप स्टेशन पर हर्षरूप सीटी बजाती हुई आरही है और उपदेशक रूप स्टेशन मास्टर उपदेश रूप टिकट देकर, ईश्वर के चरणारविन्दरूप सदर स्टेशनपर पहुँचाने के लिए तैयार हैं। तैसेही ध्यानरूपी तार कुण्डलिनी से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त खबर देने को तैयार हैं इस स्टेशन पर ८४ लाख योनिरूप भिन्न२ प्रकार के टिकट दिये जाते हैं और उन में फस्टक्लास [१ दर्जे] का टिकट मनुष्य योनि है ? उसके आश्रय से धर्मरूप सर्वोत्तम गाड़ी पर चढने का उद्योग करना चाहिए, यदि यह गाड़ी हाथ से निकल गई तो फिर पछतावाही रह जायगा, इस लिए, आगे के विचार की ओर आप लोग सावधान रहें।

इन विद्याओं में ब्रह्मविद्या सर्वोत्तम विद्या है, वह अन्तकाल के लिए कल्याण करनेवाली है और इस विद्या को जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी होते हैं। पूर्वकाल में अग्निरूप गायत्री के कारण ब्राह्मण परमश्रेष्ठ हुए, अपने तेजोबल से सबके पूज्य हुए, अधिक तो क्या बड़े २ राजा भी हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़े रहते थे और उनको अपने राजसिंहासन पर बैठाते थे। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञमें भोजन कराने के लिए ब्राह्मणों को बुलाया, तब ब्राह्मणों ने स्पष्ट कहदिया था कि-हम ऐसे यज्ञ में भोजन करने को नहीं आते, परन्तु अब वह समय और ब्राह्मणों का वैसा तेज नहीं है, ब्रह्मविद्या के न होने से ब्राह्मणों की हीन दशा होरही है। संन्यासी आदिकों की भी यही दशा है। पहिले परम आदर सत्कार होता था, परन्तु अब कमण्डलु लेकर द्वार २ घूमने पर भी कोई नहीं बूझता! क्षत्रियों की भी ऐसी ही दशा है, जो क्षत्रिय अपनी क्षात्रविद्या के तेज से बेधड़क शत्रुओं के ऊपर टूट पड़ते थे, और तोप की नाल में भी हाथ देदेते थे, वह क्षत्रिय आज तेजोहीन होकर एक साधारण बन्दूक का शब्द सुनने पर भी अन्धेरी कोठरी में छुपकर बैठने का उद्योग करते हैं, एक ब्रह्मविद्या के न होने से ही दोनों वर्णों की यह दशा हुई है। वैश्यों की भी यही दशा है, और शूद्रों में तो सर्वथाही विपरीति भाव होगया है वह शास्त्र आज्ञा की कुछ परवाह न करके अपनी बुद्धिसे उच्च वर्णों के आचार बिचारों को ग्रहणकर अपने को उच्च कहनेलगे हैं। देखो रेल में जब कोई ब्राह्मण बैठा होता है और उसके समीप कोई स्पर्श के अयोग्य शूद्र आकर बैठता है तब ब्राह्मण उससे अलग को बचेहुए बैठनेको कहता है तो इसके उत्तर में वह कहता है कि-मैंने भी टिकट का मूल्य दिया है इसके सिवाय मैंभी मनुष्य हूँ तुम भी मनुष्य हो तब बिचारा ब्राह्मण अपना लोटा पुस्तक उठाकर एक कोनेमें को जा बैठताहै, तब वह शूद्र महाशय ब्राह्मण की ओर को और भी चरण फैलाकर बैठने लगते हैं सार यह है कि-जैसे हम लोगों की पोशाक में अन्तर पड़गया है तैसे ही वर्णों में भी गड़बड़ी हुई है। पहिले चरणोंतक लटकता हुआ, अङ्गरखा और

पैर के पंजेमात्र में भरकर आनेवाला जूता पहिना जाता था, वह रीति बदल कर जूता घुटनों तक का होते २ अब सब शरीर चमडे से ही बांधा जाता है, जंघाओं तक जूता चमडे का कमर में पेटी चमडे की कमर से कन्धों तक पतलून बांधने के तशमें चमडे के शिरपर बलायती टोपीमें चमडा और अङ्गरखा कोट का रूप पाकर कमर तक ही रह गया वर्णोंमें भी ऐसे ही उलटी दशा होगई है। ऐसी शोचनीय दशा आने का कारण केवल हमारा कर्मलोप है। जैसे किसी वर्णमाला की लिपि में का पहिला अक्षर फटकर या पुस्तक को कीडे के खालेने के कारण नष्ट होकर उसमें का दूसरा अक्षर "ख" ही उस पहिले के स्थान में होजाय और ऐसा विपरीत ज्ञान होजाय कि-पहिले धोखा हुआ वह 'का' यही है तथा इसी प्रकार आगे 'ग' ख और 'घ' ग मान लिया जाय तो केवल एक वर्ण की अव्यवस्था से भाषा में सर्वत्र अव्यवस्था होकर अर्थ का अनर्थ होसकता है तैसे ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने की आदि साधनरूप जो हमारी सन्ध्या तिससे विमुख होने के कारण हमारी सब प्रकार की व्यवस्थाओं में गडबडी पडगई है। जैसे अङ्गरेजी भाषाके मूल २६ अक्षर हैं तैसेही ब्रह्म विद्या के भी १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय (चोरी न करना] ४ ब्रह्मचर्य ५ क्षमा ६ धृति (धीरज रखना) ७ दया ८ आर्जव [सरलपना अर्थात् अहंपने को त्याग कर सब से दीनता पूर्वक वर्ताव करना] ९ मिताहार [थोड़ा भोजन करना] १० शौच [शरीर और चित्त को पवित्र रखना] ११ तप १२ सन्तोष १३ आस्तिक्य (शास्त्र और गुरु के उपदेश मय वाक्यों पर बिश्वास रखना) १४ दान १५ ईश्वर का पूजन १६ सिद्धान्त वाक्य श्रवण [उपनिषदादि को सुनते रहना] १७ ही [बुरे कार्यों में लज्जा करना और सत्कार्यों में किसी की भी लाज न करना] १८ मति संसारिक सुखों का तो क्या स्वर्ग आदि ऐश्वर्य का भी लोभ न करके "ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है" ऐसी दृढ़ बुद्धि रखना) १९ जप २० हुत [तमोगुणी रजोगुणी पुरुष पशुओं का और फलादिकों का हवन करते हैं परन्तु ज्ञानी पुरुष अन्तर्दृष्टि करके विषयोंका इन्द्रियोंमें और

इन्द्रियों का अन्तःकरण में हवन करते हैं] २१ आसन २२ प्रणायाम २३ प्रत्याहार (चित्त रुककर शब्दादि विषयों की ओर को चलायमान नहीं होता है तब इन्द्रियें भी रुक जाती हैं और अपने २ विषयों को ग्रहण नहीं करती हैं इसका नाम प्रत्याहार है) २४ धारणा [नाभि चक्र आदि विशेष स्थान में चित्त को स्थिर करना] २५ ध्यान (जहां चित्त की धारणा करी हो तहां ही उसकी एकाग्रता करके दूसरी ओर को न जानें देना) और २६ समाधि ध्यान जब ध्येय के स्वरूप का होकर अन्य पदार्थ का ज्ञान भिन्न रूप से कुछ नहीं रहता है और ध्यान तथा पदार्थ दोनों का एकाकार होजाता है तो उसको समाधि कहते हैं) यह छब्बीस ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर हैं, भगवान् पतञ्जलि ने–यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि इस प्रकार योग [ब्रह्मविद्या] के आठ अङ्ग कहे हैं, इन में पहिले दो अङ्ग यम और नियम का हठयोग प्रदीपका आदि ग्रन्थों में विस्तार के साथ वर्णन करा है और यम अहिंसा आदि दश भेद तथा नियम के तप आदि दश भेद कहे हैं इस प्रकार दोनों मिलकर बीस अङ्ग होते हैं और शेष आसन आदि मुख्य छः अङ्ग इस प्रकार सब २६ अङ्ग हैं और ब्रह्मविद्या के मूल अक्षर अर्थात् कटकौड़े हैं ॥

एक साथ जगत् भर के सब मनुष्यों से यदि बूझाजाय कि––तुमको क्या चाहिये ? तो सब यही कहेंगे कि–हमें सुख, आयु, नीरोगता और ब्रह्मप्राप्ति (मोक्ष) यह चार पदार्थ चाहिये [इन में भी सब से पहिले आयु की विशेष आवश्यकता है, विचार देखो कोई अत्यन्त आसन्नमरण होकर पड़ा हो और डाक्टर आकर कहे कि–तुझे अच्छा करने के लिये पहिले तेरी भुजा गर्दन में शस्त्र से छेद किया जायगा फिर औषधि लगाई जायगी तो वह यही उत्तर देगा कि–महाराज मेरी भुजा को चाहे चीर डालो परन्तु कृपा करके गर्दन को बचादो, न जाने कदाचित् गर्दन से मर्मस्थान में शस्त्र लगने से मरण ही होजाय, सार यह है कि–बुढ़ापे में भी उसको जीवित रहने की ऐसी प्रबल इच्छा होती है, इस कारण मनुष्य

की सब से पहिली प्रिय वस्तु आयुही है। इसी प्रकार शेष तीनों बातों की भी कौन भाग्यवान् इच्छा न करेगा ? यह चारों प्रकार के लाभ सन्ध्यावन्दन से होते हैं, सारांश यह है कि ब्रह्मरूपी हीरा हमारे पास ही है, परन्तु उसका बतानेवाला श्रेष्ठ गुरु चाहिये, इसमें उदारण है कि--एक समय एक गड़रिया भेड़े चराने को जङ्गल में गया, दैववश वहां उसने एक पड़ा हुआ हीरा पाया, परन्तु उसको हीरे की पहिचान नहीं थी, इस कारण उसने एक चमकीले कांच का टुकड़ा समझ के डोरे में बांधकर अपनी भेड़ के गले में पहिरादिया।फिर कुछ दिनों में वहां दुष्काल पड़ा और लोग अन्न के लिये तरसने लगे तो इस बिचारे की दुर्दशा की दुर्दशा का तो कहनाही क्या ? पाव भर अन्न भी मिलना कठिन होगया, तब तो दीन हीन होकर घरमें पड़रहा इसी अवसर में उसके यहां परदेश से कोई सम्बन्धी आया, वह अपने सम्बन्धी की ऐसी दुर्दशा देखकर बड़ा दुःखित हुआ, इतने ही में वह भेड़ उसकी दृष्टि के सामने आगई और उसके कण्ठ में बँधा हुआ हीरा भी दीखा, तब उसने बूझा कि भाई! यह किसकी भेड़ है और इसके गले में क्या बांधा है ? गडरिये ने उत्तर दिया कि--यह मेरी भेड़ है और इसके गले में मैंने इस २ प्रकार से मिली हुई चमकदार कांच बांध दी है तब तो वह कहने लगा कि--भाई ! यह छोटी वस्तु नहीं है यह हीरा है और तू बाजार में लेकर जायगा तो तुझको सहज में ही इसके २० । २५ सहस्र की जगह आधी कीमत तो भी मिल जायगी, तब तो वह उसी बाजार को गया और उस हीरे को बेचकर बहुतसा धन लाया जिस से उसका सब कष्ट दूर होकर वह एक धनवान् बनगया । इसी प्रकार ब्रह्मरूपी रत्न हम सबों के कंठ में बँधा हुआ है, परन्तु हम उस बहुमूल्य मणि को जानते नहीं हैं, इस कारण ही हमारी ऐसी दीन हीन दशा होरही है तथापि आशा है कि--सच्चे गुरु के मिलने पर हमें उस का सच्चा मूल्य मालूम होजायगा. जिस से हमको ऊपर कहेहुए चार प्रकार के लाभ होंगे। सार यह कि--संध्या ही ब्रह्मविद्या की प्राप्ति करानेवाली है और उसकी उत्तम रीति

जानने के लिए हमको उद्योग करना चाहिए। अब हमारे सन्ध्या करने से यदि हमको यह चार लाभ होंगे तो उसको उचित रीति से करने के लिए, पहिले हमारे शरीर की कैसी रचना है, इस विषय में थोड़ासा विचार करते हैं।

यह स्थूल शरीर किलारूप है, पृथ्वी आदि पांच तत्त्व इसकी दीवारें हैं चमड़ा, रुधिर, मांस, हड्डी आदि सात धातुएँ खाई हैं चतुर्दलचक्र षट्दलचक्र आदि सात मञ्जिलें हैं साढे तीन लाख नाड़ियों का परकोटा बना है। सात मंजिलें यह हैं (१) गुदा और मूत्रेंद्रिय के मध्य में चतुर्दल चक्र है इस को (Pelvic plexus) अर्थात् आधारचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् गणेश हैं। और इस चक्र में ज्योतिष्मती भगवती कुण्डलिनी है। नाभि के नीचे लिंगके पश्चिमभाग में षट्दलचक्र है इसको (Hypogastric plexus) अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् ब्रह्मा हैं। ३) नाभि में दशदलचक्र है इसके (Epigastric plexus) अर्थात् मणिपूरचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृ-देवता भगवान् विष्णु हैं। (४) हृदय में द्वादशदलचक्र है इसको (Cardiac plexus) अर्थात् अनाहतचक्र कहते हैं इसके अधिष्ठातृदेवता भगवान् शिव हैं (५) कण्ठ में षोडशदलचक्र है इसको (Carotid plexus) अर्थात् विशुद्धिचक्रकहते हैं इसके दाईं ओर इड़ा और बाईं ओर पिंगला तथा मध्य में सुषुम्णा है इसके अधिष्ठातृदेवता रुद्र हैं (६) भृकुटिस्थान में द्विदलचक्र है इसको (Medulla oblongata) अर्थात् आज्ञाचक्र कहते हैं और कोई इसको बिन्दुस्थान भी कहते हैं (७) मस्तक में सहस्रदलचक्र है इसको (Brain) अर्थात् ब्रह्मचक्र कहते हैं इसमें संविद्रूप सच्चिदानन्द हैं।

इस प्रकार यह ७ मंजिलें हैं। किसी को शङ्का होगी कि शरीर के भीतर यह कमल और उनकी पखुरियें या चक्र है यह कैसे होसकता है? क्या सत्यही कमल और चक्र आदि हैं? इसका उत्तर यह है कि वह कमल आदि तालाव में के कमल आदि की समान नहीं हैं, किन्तु उन

स्थानों में बहुत सी नाड़ियें इकट्ठी होकर जो एक जाल बनगया है उसका आकार कमल की समान है। तरबूज के डंठल की समान मस्तक पर लटकती हुई शिखा केवल मूर्खता का दृष्टान्त है ऐसा कितने ही भिन्न धर्मी और नवशिक्षित कहते हैं, परन्तु सनातन धर्म में यह एक मुख्य बात है जैसे किले में राजमन्दिर के समीप वा रत्नमय खजाने के चारों ओर सिपाहियों के पहिरे का बन्दोबस्त होता है और ऊपर ध्वजा फड़कती रहती है तैसे ही ब्रह्मरूपी रत्न व राजा मस्तक में के सहस्रदल चक्र में चारों ओर से प्रबन्ध होकर रहता है, और तहां उसको जतानेवाली शिखारूप ध्वजा फड़क रही है। इस कारण ही उस राजारूप, वा रत्नरूप ब्रह्मको पाने के लिए हम जब सन्ध्या करनेको उद्यत होते हैं उस समय पहिले ब्रह्म सूचक गायत्री मन्त्र से शिखा को बांधना कहा है।

ऊपर वर्णन करे हुए शरीर रूपी किले में परमात्मारूपी हीरा है उसको लेने के लिए मानों जीवरूपी चोर रातदिन उद्योग करता रहता है उसको एक के पीछे दूसरे खाई आदि से रुकना पड़ता है हरएक जीव इनके पार नहीं होसकता कदाचित् उसने थोड़ासा उद्योग किया भी तो उसकी दशा ठीक नहीं रहती है अर्थात् उपरोक्त पञ्चतत्त्वों की दीवारों में अथवा रक्त मांसादि की खाइयों में ज्वर खांसी आदि से हानि पहुंचने लगती है और उससे एक प्रकार की स्थिरता होकर कभी २ शरीर के नाश होने का भय होता है। पहिले समय वाल्मीक आदि ऋषियों के शरीर पर बमई आदि बन गईं परन्तु वह उस की कुछ परवाह न करके ब्रह्म में ही मग्न रहते थे वैसी शक्ति आज कल हममें नहीं रही है हममें ऐसी शक्ति न रहने का कारण क्या है? क्या पहिले पुरुष ईश्वर को लालच और रिश्वत देते थे और हम नहीं देते हैं, इस कारण वह हमारी ऐसी दुर्दशा करता है? प्यारे सभासदो! यह बात नहीं है परन्तु हमारे पूर्व पुरुष जिस निष्ठा से रहते थे वह निष्ठा हम में नहीं रही इस कारण ही ऐसी हीन दशा हो रही है। यद्यपि दशा बहुत खराब है परन्तु उद्योग करने से हम अपना बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। अब, जैसे

किसी राजा से मिलना होता है तो पहिले द्वारपाल से मेल करने पर युक्ति से कार्य सिद्ध होता है, तैसे ही शरीररूपी स्थान . के प्राणरूपी मुख्य द्वारपाल से हम को मेल करना चाहिए । सब इन्द्रिय आदिकों में प्राण ही श्रेष्ठ है इस विषय पर छान्दोग्य उपनिषद् में इस प्रकार का इतिहास है कि–

योह वै जेष्ठं च श्रेष्ठं च० ॥ १–५ ॥ अथ ह प्राणा अह ᳫँ श्रेयसि व्यूदिरेऽहᳫँ श्रेयानस्म्यहᳫँ श्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥ तेह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन् को नः श्रेष्ठ इति, तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥ सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यपर्येत्योवाचकथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाकला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश हावाक् ॥ ८ ॥ चक्षुर्होच्चक्रा० ॥ ॥ ९–११ ॥ अथ प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्वीशशंकून्संखिदेदेवमितरान् प्राणान्समखिदत्तᳫँ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोसि प्रोत्क्रमीरिति ॥ ॥ १२ ॥ अथ ह० ॥ १३–१५ ॥

यह सम्वाद बहुत बड़ा है परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि एक समय सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ कौन है इस बात का विवाद होकर यह निर्णय करने के लिये ब्रह्मा जी के पास गई तब ब्रह्मा जी ने कहा तुम में से हरएक एक २ वर्ष तक शरीर से बाहर रहो तब जिसके न होने से काम अटकेगा म उसीको श्रेष्ठ समझूँगा, तिसी प्रकार सब इन्द्रियें पारी २ से बाहर निकल गई परन्तु काम न अटका नेत्र जाने पर अन्धे की समान,

कान जाने पर बहिरे की समान इत्यादि सब व्यवहारों का निर्वाह होगया, परन्तु अन्त में "सोहम् सोहम्" करनेवाला प्राण ही श्रेष्ठ ठहरा, क्योंकि इसके जरा चल विचल होते ही सब इन्द्रियों का काम बन्द होनेलगा और शरीर पञ्चतत्त्व में गिलनेलगा नष्ट होनेलगा तब सब इन्द्रियों ने प्रार्थना करी कि हे प्राण ! तू हमसे अलग न हो सार यह है कि प्राणही श्रेष्ठ ठहरा और उसको शरीर का द्वारपाल बनाया। यह केवल जागतेहीं में अपना पहिरा नहीं देता है किन्तु सोते समय भी अपना काम करता रहता है, और उस समय चारों ओर सूनसान होने के कारण मानों चोरों का अधिक भय समझकर अपना काम बड़े जोर से चलाता है। बस इस पहिरेदार से मित्रता करनेपर ही शरीररूप किले में स्थित परमात्मारूपी हीरा सहजमें ही हाथ लगजायगा। प्राणायाम करनाही प्राणों से मित्रता करना है और वह प्राणायाम हमें सन्ध्या वंदन में ही सीखना पडता है इस कारण सन्ध्याही हमारे लिए ब्रह्मप्राप्ति का साधन है, इसके द्वारा ही हमें ईश्वर की प्राप्ति होगी, अतः यह संध्या ठीक २ विधिपूर्वक होनी चाहिए, आजकल बहुत से लोग जैसे सटपट करके सन्ध्या कर लेते हैं वह ठीक नहीं, आजकल संध्या के समय प्राणायाम करनेवाले आसन या पटले पर नाक कान को हाथ लगा थोडासा पानी छोड पढते हैं गायत्री मन्त्र, ध्यान रहता है चूल्हे की ओर, दिखावे को परमात्मा का ध्यान करते हैं परन्तु ध्यान होता है कचहरी या व्यापार का, ऐसा करना केवल शुष्कवाद है इससे कुछ लाभ नहीं होसकता, अतः इस अन्ध परम्परा को छोडकर वास्तविक रीति से संध्या करने पर ही आत्मोन्नति होगी।

परम हितकारिणी प्राणायाम की क्रिया को योग्य रीति से करने पर प्रारम्भ में कठिनता प्रतीत होगी, परन्तु अभ्यास से सब कुछ सिद्ध होसकता है इस कारण जिस कार्य के प्रारम्भ में कष्ट हो और परिणाम में सुख मिले उसको स्वीकार करना ही विचारवान् का लक्षण है, परन्तु अज्ञानी पुरुषों को उसका तत्त्व नहीं प्रतीत होता है। बालक को पाठशा-

लामें भेजने पर जब गुरु अक्षर सिखाने लगते हैं उस समय वह सिखाना उस बालक को इतना कष्टदायक प्रतीत होता है कि वह उस सीखने से भागता है और चित्त में पिता और गुरु को शत्रु के समान समझने लगता है. परन्तु अन्त में जब बडी बडी परीक्षाओं के पार होकर बहुतसा धन पाता है तब परम आनंदित होता हुआ कहता है कि मेरे माता पिता और गुरु को धन्य है जिनकी कृपासे मैं इस योग्य हुआ। ब्रह्मविद्या के विषय में भी यही बात है प्रारम्भ में यद्यपि यम नियम प्राणायाम आदि कार्य कठिन प्रतीत होते हैं परन्तु सब अभ्यास करते करते वह सिद्ध होजाते हैं तो अन्त में उनसे सच्चा सुख मिलता है। पहिले कहा ही था कि ब्रह्मविद्या के २६ अक्षर हैं जैसे कोई भी भाषा सीखनी हो तो उसकी सम्पूर्ण वर्णमाला सीखनी पडती है और उस वर्णमाला का ज्ञान होने परही वह भाषा समझ में आती है, तैसेही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिये उसके अहिंसा सत्य आदि वर्ण भी सीखने चाहिये उन वर्णों में अहिंसा स्वरों की समान है, उसके बिना व्यंजन रूप अन्य गुणों से कुछ काम नहीं चलसक्ता। मैं एक व्याख्यान अहिंसा विषय में ही विस्तारके साथ अलग कहूँगा, इस कारण अब इस ब्रह्मविद्या की वर्णमाला में का दूसरा वर्ण जो सत्य है उसके विषय में कुछ कहता हूँ।

मनुष्य को सदा सर्वदा सत्यही बोलना चाहिये यदि सत्य न हो तो इस जगत् में के व्यवहार कभी चलही नहीं सकें, और पद पद पर अव्यवस्था होकर मनुष्य समाज और उन मनुष्यों के कुटुम्बों की दशा भी बिगड जाय इस कारण ब्रह्मविद्या के प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को यह गुण अवश्य ही सम्पादन करना चाहिये श्रीमनु भगवान्‌ने कहा है कि—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोले, मधुर बोले, और सत्य भी ऐसा बोले जिसमें दूसरे को कठोर प्रतीत न हो, अर्थात् उससे किसी का चित्त न दुःखे दूसरे के

चित्त को दुखाने वाला सत्य भी दोषदायक होता है। समझ देखो कि—कोई पुरुष डेढ सेर भोजन करता है उससे यदि कोई कहे कि वाह आप तो १॥ सेर पर हाथ फेरते हैं ? तो यद्यपि यह कहना सत्य है परन्तु ऐसा सुनकर दूसरे पुरुष को क्रोध आवेगा। इस कारण यदि ऐसा कहा जाय कि—महाशय ! आप की पाचन शक्ति औरों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, तब उसको असह्य प्रतीत न होकर अपनी प्रशंसा प्रतीत होगी, तिसी प्रकार जब कोई प्रवीण न्यायाधीश किसी फांसी के कैदी को हुक्म सुनाता है तो वह सुनाने के अनन्तर फिर कहता है कि तेरे ऊपर मुझें बड़ी दया आती है और मेरी इच्छा थी कि तुझको इस दण्ड से मुक्त करदूँ परन्तु क्या करूँ ? मैं कानून से बँधा हुआ होने के कारण विवश हूँ, तो मरण काल में भी वह कैदी उस न्यायाधीश को बुरा नहीं कहता है। सार यह है कि सत्य होने पर भी जो प्रिय प्रतीत हो उस वचन को ही बोलै, ऐसा होते २ कदाचित् अप्रिय होने के भय से मनुष्य असत्य प्रिय वचन न बोलने लगें। इस कारण मनु जी कहते हैं कि प्रिय होने पर भी जो असत्य हो उस वचन को कभी न कहै। यह सत्य बोलने के महत्व का नियम ध्यान में रखना चाहिये। इस विषय में दृष्टान्त है कि—एक पुरुष को बैंगनों का साग प्रिय लगता था। इस कारण उसने अपने सेवक से कहा कि परमेश्वर ने यह साग मनुष्य के लिये बहुतही अच्छा बनाया है, तब वह सेवक स्वामी की मनसा देखकर कहने लगा कि हां साहब इस कारण ही परमेश्वर ने इस उत्तम फल के ऊपर छत्र रख दिया है। उस दिन उसने बैंगनों का साग बनवाकर खूब खाया और दूसरे दिन उससे विकार होकर दुःख बढने लगा तब तो वह बोला कि यह बडा बुरा साग है। यह सुन उस खुशामदी सेवक ने कहा हां महाराज इस कारण ही परमेश्वर ने इस के मुख पर कांटे छेद दिये हैं इतना सुन वह स्वामी अचम्भे में होकर कहने लगा कि क्योंरे कल तैंने बैंगनों की प्रशंसा की थी और आज ऐसी निन्दा करता है इसमें तेरा कौनसा कहना सत्य समझा जाय ? उसने उत्तर दिया मैं बैंगनों का नौकर नहीं

हूँ ! मैं तो आपका सेवक हूँ, इस कारण जो बातें आपको प्यारी लगें वही कहता हूँ, सार यह है कि ऐसी असत्य मिली मुह देखी सच्ची बात को त्यागना ही अच्छा है। परन्तु आज कल ऐसी मुँहदेखी बातों का प्रवाह अधिक बढगया है जिससे मनुष्य समाज की बड़ी हानि होती है, जहां तहां हरएक काम में पालिसी देखने में आती है परन्तु जब यह कुचाल बन्द होगी तबही मनुष्य समाज का कल्याण होगा और ब्रह्मविद्या में तो ऐसी कुचाल का लेश भी ठीक नहीं । तथापि यह बात ठीक है कि जिसका ऐसा असत्य बोलन का स्वभाव पडगया है वह एक दिन में दूर नहीं होगा परन्तु उसको उस कुचाल के त्यागने का हर समय ध्यान रखना चाहिये। आज बीस भाग असत्य और पांच भाग सत्य बोलता है तो कल से उन्नीस भाग असत्य और छै भाग सत्य, आठ दिन के अनन्तर अठारह भाग असत्य और सात भाग सत्य बोले इस प्रकार बढातेर अन्तमें पचीसों भाग सत्य बोलने लगैगा । इस पर कोई शङ्का करे कि सन्ध्या में पापों को दूर करने वाला मन्त्र कहां है उनसे रात्रि के (My dear friend take glass for my love) इत्यादि पापों का प्रक्षालन प्रातःकाल की सन्ध्या से और दिनभर झूठ बोलना जेब काटना झूठी दस्तावेज बनाना गरीबों की गरदन मरोडना इत्यादि पापों का प्रक्षालन सायं सन्ध्या से होता है, यदि कोई ऐसा समझता हो तो व्यर्थ है। सन्ध्या में पाप नाशन का ऐसा विपरीति अर्थ नहीं किन्तु देखकर चलते में भी यदि अनजान में पैर पडकर चीटी आदि कुचल जाय या किसी अपरिहार्य कारण से कोई पाप बनजाय तो उस पाप को दूर करने के लिये ही सन्ध्या में का अघमर्षण मन्त्र है ! जान बूझ कर लोगों की गर्दन मरोड़ने के लिये नहीं। तीसरा गुण अस्तेय है, दूसरे वस्तु न चुराने का नाम अस्तेय है इस गुण का पालन भी ध्यान देकर करना चाहिये नहीं तो चाहे जिसकी वस्तु चाहे जो कोई लेने लगैगा तो जगत् म व्यवस्था न रहेगी मनुष्यों के व्यापार सर्वथा बन्द होजायँगे और ऐसी हीन दशा से भी अधिक दुर्दशा भोगनी पडेगी। इस कारण दूसरे की वस्तु लेने की

इच्छा को सर्वथा ही त्यागना चाहिए, ब्रह्मवित्ता के साधकों के तो स्वप्न में भी यह बात न आनी चाहिए। एक स्त्री अपने पति के साथ मार्गमें चली जारही थी पति ने देखा कि एक मोहर पडी है उसने यह विचार कर कि कदाचित् मेरी स्त्री के मन में इसको लेने की पाप वासना न उत्पन्न हो इस कारण आगे बढकर उस मोहर पर एक मुट्ठी धूल डाल दी जब स्त्री बढ कर आई तो उसने कहा कि तुम झपट कर आगे क्यों चले आये? पतिने उत्तर दिया कि हे प्रिये! वहां एक मोहर पडी थी तुझे उसको लेने की इच्छा न हो इस कारण मैंने आगे बढ कर उस पर धूल डाली थी। उस पतिव्रता ने उत्तर दिया कि हे प्राणनाथ! आपकी दृष्टि में अब भी सुवर्ण की चमक है नहीं तो आप उसपर धूल न डालते, तब उस पुरुष ने कहा कि हे प्रिये तू धन्य है तुझ में अस्तेय धर्म मुझ से भी अधिक है सार यह है कि मन वश में बिना हुए ब्रह्मविद्या प्राप्त नहीं हो सकती॥

इसी प्रकार धृति भी परम आवश्यक गुण है:पुराणों में महात्मा वसिष्ठजी का धैर्य प्रसिद्ध ही है। विश्वामित्रजी ने उनके सौ पुत्रोंको मारडाला तथापि उन ब्रह्मर्षि का धैर्य नहीं डिगा, ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने में अनेकों प्रकार के व्यावहारिक और दैवी विघ्न होते परन्तु उनसे किञ्चिन्मात्र भी डिगना न चाहिए; चाहे कुछ होजाय धैर्य को नहीं छोड़ूंगा, ऐसी दृढता रखनी चाहिए, इस सद्गुण के विषय पर महाभारत में एक अति रस भरी कथा है यदि आप लोग उस पर ध्यान दोगे तो इस सद्गुण की महिमा सहज में ही ध्यान में आजायगी। जिस समय महाराज धर्म-राज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ के लिए श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा था तब वह जाते जाते ताम्रध्वज राजाके नगर के समीप आया, उसको ताम्रध्वज के पुत्र मयूरध्वज ने पकड लिया। पीछे से अर्जुन और श्रीकृष्ण उस घोडे की रक्षा करने को सेना सहित आरहे थे उनको समाचार मिला कि ताम्रध्वज के राज्य में हमारा घोड़ा पकडा गया उसको छुड़ा देने के लिए अर्जुन ने लिखकर भेजा परन्तु राजा ने यह बात न मानकर अपने पुत्र

मयूरध्वज को क्षात्रिय धर्मानुसार अर्जुन के साथ युद्ध करने को भेजा। अतिघोर युद्ध होते होते अर्जुन ने मयूरध्वजका रथ सौ हाथ पीछे को हटा दिया तब तो मयूरध्वज ने भी अर्जुन का रथ दो हाथ पीछे को हटाया जब मयूरध्वज अर्जुन का रथ पीछे को हटारहा था उस समय श्रीकृष्णजी ने उसको धन्यवाद दिया, यह देख अर्जुन न सहसका और क्रोध में भर-कर भगवान् से कहने लगा कि मैंने मयूरध्वज के रथ को सौ हाथ पीछे हटादिया तब तो आप मौन रहे और इसने मेरा रथ दोही हाथ पीछे हटाया उसका आप धन्यबाददेते हैं! भगवान् ने कहा कि हे अर्जुन इसको रथ साधारण लकडीका बना हुआ और साधारण घोडों से जुता है परन्तु तेरा रथ दैवी है तिसपर भी सब ब्रह्माण्डका भार लिए मैं उसके ऊपर बैठा हूँ, तथापि यह इतने भार को पीछे को हटाता है, क्या यह बडाभारी आश्चर्य और धन्यवाद देनेकी बात नहीं है? तब अर्जुन निरुत्तर होकर बूझने लगा कि इसमें यह पराक्रम कहां से आया। इसपर श्रीकृष्ण जी ने कहा कि-भाई! इसके पिता में सर्वोत्तम धृति (धैर्य) गुण है उसीका यह फल है। तब अर्जुन ने कहा कि-किसी प्रकार मुझे इस की परीक्षा करके दिखाओ। तब तो अर्जुन को निश्चय कराने के लिए श्रीकृष्णजी ने उसी समय साधु का रूप रक्खा और अर्जुन को चेला बना कर साथ में एक माया का बनाया हुआ सिंह लेलिया तथा ताम्रध्वज राजा के द्वारपर जा पहुँचे, द्वारपाल ने राजा से निवेदन किया कि-महाराज द्वारपर अतिथि आये हैं तब राजा परम प्रसन्न हुआ और साधुओं को महल में बुला सत्कार के साथ आसन देकर विनय के साथ प्रार्थना करी कि-साधु जी! आपकी क्या इच्छा है? तब साधुजी ने कहा कि-मेरे इस सिंह को मनुष्य का मांस भक्षण करने की इच्छा है, राजा अतिथि सत्कार करने में चतुर था, अतः उसने कहा कि-बहुत अच्छा, खून के अपराध करने के कारण फांसी पानेवाले कैदी हैं, उनमें से एक सिंह के लिए बुलवाए देता हूँ। तब साधुओं ने कहा कि हमको ऐसा अमंगल मांस नहीं चाहिए, हमको तो तेरे पुत्र मयूरध्वज के दाहिने अंग का मांस चाहिए, तुझ से

होसकै तो दें ? राजा ने स्वीकार कर लिया और रणवास में जा रानी की भी सम्मति ली तो वह भी कहने लगी कि महाराज ! यदि साधुओं की इच्छा इस ही प्रकार पूरी हो तो कुछ चिन्ता नहीं है, फिर पुत्रको बुलाकर बूझा तो उसने कहा कि-तात ! यह शरीर किसी न किसी दिन तो नष्ट होयगा ही, फिर दुःख में लिप्त होकर मरने की अपेक्षा तो साधुसन्तों के कार्य में आजाय तो सार्थक होजायगा, अतः मुझ भी यह बात स्वीकार है और तैयार हूं, तब राजाने आकर अतिथियों से कहा कि आप उठिये और स्नान आदि से निवटकर मनुष्यका मांस लीजिये, तब, राजसभा इकट्ठी होजानेपर वध करने के लिए पुत्रको हमारे सन्मुख लेकर आओ साधुओं ने ऐसी आज्ञाकरी, सो मंत्री और दरबारियों से सब राजसभा भरजाने पर, साधु राजा, रानी और वह पुत्र आये, तब राजा और रानी से साधुओं ने कहा कि-तुम इसके शिरपर आरा रखकर काटो और तुम तीनों में से किसी के भी नेत्रों में यदि आंसू आगये तो मैं उस अपवित्र मांस को न लेकर ऐसे ही लौट जाऊंगा तीनों ने यह नियम स्वीकार कर लिया परन्तु दरबारियों को इससे बडाभारी दुःख हुआ और रो २ कर कहने लगे कि-आज हमारे राजवंश का नाश होता है तथा एक साथ सबके मुख से रामनाम की ध्वनि निकलने लगी। इधर राजा और रानी ने पुत्र के मस्तकपर आरा रखकर चीरना प्रारम्भ कर दिया,चीरते२ नाक पर्यन्त आरा आनेपर बाएं नेत्रमें से कुछ आंसू निकलने लगा तब साधुने कहा हाथ रोको २ यह पुत्र रोता है, अब मैं इस मांस को न लूंगा, तब वह पुत्र ईश्वर का ध्यान धर करुणास्वर से कहने लगा कि-हे दयासिन्धो ! हे दीनवत्सल ! हे भगवन्! अब कहां तक अन्त टटोलोगे ! देखो मैं साधुओं के सत्कार के लिए अपना शरीर देता हूँ परन्तु यह केवल दहना अंग ही लेते हैं, सो वाम अंग वृथा जायगा अतःवामनेत्र में आंसू आया है, यह सुन साधु जी ने कहा अच्छा हम दोनोंही अंग ले लेंगे, फिर सब शरीर को चीरकर टुकड़े२ करके सिंहके आगे डाल दिया। इधर रसोई तैयार होनेपर ताम्रध्वजने पात्र परोसे तब साधुजी ने कहा-

तुम, रानी और पुत्र तीनों भी मेरे सन्मुख आकर भोजन करो, तब तो राजा विह्वल होकर कहनेलगा कि, महाराज! मैं पुत्रको कहां से लाऊं! साधुओं ने कहा घबड़ाओ मत घर में जाकर बुला लाओ। साधुओं के वचनपर पूर्ण श्रद्धा होने के कारण राजा ने महल में भीतर जाकर पुत्रको पलङ्ग पर लेटा हुआ देखा और उठाकर लिवालाया, उसके आते ही आकाश में से पुष्पों की वर्षा हुई और श्रीकृष्णजी ने साक्षात् दर्शन देकर स्त्री पुत्र सहित राजा को कृतार्थ करा, अर्जुन विचारा मौन बैठा रहा, उसने मुख से एक अक्षर भी नहीं निकाला, अन्त में श्रीकृष्णजी ने वर मांगने को कहा तब राजा ने कहा कि—मैं यह वर मांगता हूँ कि कलियुग में धर्म की ऐसी प्रचण्ड परीक्षा किसी की न कीजाय। धैर्य की ऐसी महिमा है। अगले व्याख्यान में अहिंसा के विषय में अनेकों शास्त्र और मतों के विचार दिखाकर विशेष विचार किया जायगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वामी हंसस्वरूप।

॥ रामनाम की महिमा और अवतार ॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ॥
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

सनातन धर्म रूपी रंग खेलने के लिये सभासद् रूपी खिलाडी तैयार हो रहे हैं। यह कर्मकाण्ड रूपी कुंकुमोंमें ज्ञानरूपी गुलाल भरकर एक दूसरे के ऊपर फेंकरहे हैं, प्रेमरूपी पिचकारी से उनका हृदय रूपी वस्त्र रँगगया है और उपासना रूपी लेपन की सुगन्ध से उन का मस्तक भररहा है, ऐसे इस रङ्ग में दङ्ग होकर सकल सभासदों से आशा है कि—

हरे रामहरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। इस प्रकार हरि नाम का स्मरण, करते रहेंगे। कल तक जो व्याख्यान हुए, इसके अनुसार बर्त्ताव करने से निःसन्देह इस लोक और परलोक में कल्याण होगा। मैंने भक्तिमार्ग के व्याख्यान में पुन-र्जन्म का थोड़ा सा वर्णन करके दृष्टान्त रूप से मीराबाई की कथा भी कही थी। वह भक्ति-'श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। अर्थात् विष्णु भगवान् का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवन, पूजन वन्दन और दासभाव, ऐसे नौ प्रकार की है, तिस में से आज स्मरण भक्ति के विषय में कुछ विचार करने की इच्छा है, क्योंकि-यह सब को सब जगह तथा सब काल में सुलभ है और परमेश्वर की प्राप्ति का सहल तथा उत्तम उपाय है। भगवान का कोई नाम भक्ति के साथ मुख से उच्चारण कर ने पर उससे पुण्य प्राप्त होकर अन्त में ईश्वर की प्राप्ति होती है, तथापि उसमें भी राम नाम की महिमा विशेष है इसका कारण आगे चलकर इसी व्याख्यान में आप के बुद्धिस्थ होजायगा। किसी भी मनुष्य को उसके नाम से पुकारने पर वह तत्काल अपने पास आकर उपस्थित होजाता है तैसेही परमेश्वर को चाहे जिस नाम से पुकारो वह आपके समीप आवेंगे क्योंकि उन के नाम अनन्त हैं, इस पर भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि-'तस्य वाचकः प्रणवः'। (समाधिपाद)। अर्थात् उस परमेश्वर का वाचक प्रणव [ॐकार] है, यही भगवान् का मुख्य नाम है, क्योंकि-इस नाम में भगवान् के सकल ऐश्वर्य का बोध होता है। माण्डूक्योपनि-षद् के प्रारम्भ में ही कहा है कि-'ॐमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योप-व्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव'। अर्थात् ॐ कार यह अक्षर सर्व मय है, उसका हम उप व्याख्यान करते हैं, भूत भविष्य और वर्त्तमान जो कुछ है अर्थात् इन तीन कालों से जो परिच्छेद्य है वह सब ॐकार रूप ही है। और जो त्रिकालातीत है, तीनों कालों से जिसका परिच्छेद नहीं

हो सकता वह भी सब ॐकार रूपही है। अकार, उकार, और मकार यह जो प्रणव की तीन मात्रा हैं, उनसे ही तीन वेद, तीन देवता, तीन गुण, तीन लोक, तीन तेज आदि उत्पन्न हुए हैं और इन तीन मात्राओं के आश्रय से ही वह रहते हैं। आप यदि कानों में अंगुली देलें तब जैसा अखण्ड नाद सुनने में आता है या हरद्वार में जैसा गङ्गा प्रवाह की ध्वनि एक समान चलरही है, तैसेही प्रणव का अप्रतिहत नाद चारों ओर भरा हुआ है तथा संकल वर्ण माला और शब्द उसी से उत्पन्न हुए हैं, उसका अवलम्बन किए बिना वाणी से कुछ उच्चारण ही नहीं होसकता। मृदङ्ग तबला आदि बाजों पर थाप देकर भिन्न २ प्रकार की गतें छेड़ने पर जैसे उन थापों की रचना भिन्न २ प्रकार की होती हैं तिसी प्रकार प्रकृति के अनन्त व्यापारों के द्वारा इस ओंकार से ब्रह्माण्ड में भिन्न २ प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, प्रणव में की मात्राही आत्मा के पाद हैं, प्रणव में की अकारादि मात्राओं की आत्मा के भिन्न पादों से एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है उसको भिन्न २ प्रकार के फल प्राप्त होते हैं–'अकारो नीयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्। मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः॥ (माण्डूक्योपनिषत्) अर्थात् प्रणव अकार की प्रधानता है, ऐसा समझ कर और आत्मा के प्रथम पाद से उसकी एकता करके जो प्रणव की उपासना करता है वह वैश्वानर होता है, उकार की दूसरे पाद से एकता करके जो उपासना करता है वह तैजस होता है और मकार की तीसरे पादसे एकता करके जो उपासना करता है वह प्राज्ञ होता है, तथा मात्रा रहित जो प्रणव वही केवल आत्मा है ऐसा जानकर जो उसकी उपासना करता है वह तुरीयावस्था पाता है अर्थात् शुद्ध ब्रह्मानन्द में निमग्न होता है यह अवस्था प्राप्त होने पर उपासक को और इससे उत्तम कोई गति मिलने को शेष नहीं रहती है। सार यह है कि–स्थूल प्रपञ्च, जागरित स्थान और विश्व, यह तीन मिलकर प्रणव में का अकार भाग होता है। सूक्ष्म प्रपञ्च स्वप्न अवस्था और तैजस यह तीन मिलकर प्रणव में का

उकार भाग है तथा स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च का कारण, सुषुप्ति स्थान और प्राज्ञ यह तीन मिलकर प्रणव में की मकार मात्रा है और मात्रा रहित जो प्रणव का रूप है वही ईश्वर का मूलरूप है अर्थात् आत्मा की तुरीय अवस्था है, आत्मा के पाद और तुरीयावस्था का विस्तार के साथ वर्णन पीछे एक व्याख्यान में कियाही है, अस्तु। इस प्रकार ओंकार के चार विभागों से ईश्वर के सब गुणोंका और ऐश्वर्य का बोध होता है इस बातको स्पष्ट करने के लिए एक व्यवहारिक दृष्टान्त कहता हूँ किसी इलाके के स्वामी का नाम लक्ष्मीधरसिंह है उसके साथ महाराज पद जोड़ा और आगे राय बहादुर पद जोड़ा तथा अन्त में के. सी. एस. आय् इत्यादि पदवी को जोड़ने पर उनका पूरा नाम महाराज लक्ष्मीधर-सिंह रायबहादुर के.सी.एस. आय् ऐसा होगया, इससे उनके ऐश्वर्य का ज्ञान होता है तैसे ही ॐकार से ईश्वर के सकल ऐश्वर्य का ज्ञान होता है, अब लक्ष्मीधरसिंह के नौकर चाकर आदि मनुष्य हरएक व्यवहार में उनके उपरोक्त लम्बे चौड़े नाम को नहीं लेते हैं किन्तु उस नाम में से सब अर्थ को थोड़े ही में दिखलाने वाले सारभूत अंश महाराज अथवा' महाराजा साहब' ऐसा निकाल कर, महाराज स्नान कररहे हैं, 'महाराजा साहब' कचहरी में बैठे हैं, इत्यादि रीति से व्यवहार करते हैं' तैसेही ओंकार के द्वारा वर्णन करे हुए ईश्वर के स्वरूप का साधारण बुद्धि के मनुष्य की समझ में आना कठिन है ऐसा जानकर ओंकार में से सारभूत अंश निकाल कर उसकी उपासना करना शास्त्रकारों ने बतादिया है! वह सारभूत अंश 'राम नाम' है, यदि कोई कहे कि कैसे? तो इसको स्पष्ट करने के लिए थोड़ासा विचार करने की आवश्यकता है, ओंकार से ही सब वर्णमाला की उत्पत्ति हुई है यह बात पीछे कहही चुके हैं, उस वर्ण माला में के र. म्. यह दो अक्षर बड़ी महिमा से युक्त हैं इस कारण इनको ओंकार के शिरोभागमें लिखने की रीति पड़ी है अर्थात् उसके मस्तक पर ऐसा चिह्न लिखा जाता है, उसमें से आधे चन्द्रमा की समान भाग रेफ को दिखाता है और बिन्दु (अनुस्वार) मकार को दिखाता है। "जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्द्ध्वगमनम्" ऐसी संस्कृत की कहावत है

अर्थात् जैसे पानी के ऊपर तुम्बी तैसे ही रेफ सब वर्णों के मस्तकपर जाता है और मोऽनुस्वारः यह पाणिनीय का सूत्र है,इससे मकार का बिन्दु-(अनुस्वार) होजाता है। इस कारण ऐसे चिह्न का अर्थ 'र, म् हुआ व्यंजन वर्ण का उच्चारण स्वर की सहायता, के बिना नहीं होसकता, इस कारण पाणिनीय ने 'ह य वर ट्' इत्यादि सूत्रों में ह्–व्' इत्यादि हरएक व्यंजन में अकार जोड़कर संस्कृत की वर्णमाला दिखाई है। इसी प्रकार र–म् इन दोनों मेंभी आकार मिलाकर राम ऐसा सब के उच्चारण करने योग्य तारक मन्त्र निकल आता है उसमें ही ओंकार का सर्वस्व आजाने के कारण उसका जिस अक्षर के साथ योग होगा अर्थात् उनका दर्शक रेफ अनुस्वार रूप चिह्न जिस अक्षर के मस्तक पर रक्खा जायगा, उस अक्षर में अद्भुत मन्त्र शक्ति आजायगी इस विषय में एक दोहा प्रसिद्ध है।

एक छत्र इक मुकुटमणि, सब वर्णन पर जोय।
तुलसी रघुवर नाम के, वर्ण बिराजत दोय॥

इस रीति से 'लँ' यह पृथ्वी बीज, ,रँ' अग्नि बीज, 'वँ' वरुण बीज और 'यँ, वायु बीज इत्यादि मन्त्र शास्त्र में प्रसिद्ध अनेकों मन्त्र बीजों की उत्पत्ति कही है। तिन तिन मन्त्रों का जप करने पर वह वह देवता प्रसन्न होकर हमको विशिष्ट फल प्राप्त होता है, उदाहरण के लिये देखलो-रँ, इस बीज मन्त्र का जप करने पर अग्निदेव के प्रसन्न होने से हमको तेज आदि गुण प्राप्त होते हैं हमारे शरीर को ताप होने पर वँ इस बीज मन्त्र का जप करना चाहिये तव वरुण देवता की प्रसन्नता से ताप शान्त होगा, ऐसेही अन्य बीज मन्त्रों के विषय में भी जानो। इन बीज मन्त्र

(१) बहुतों को शङ्का होगी कि--र म् से राम बनाने में आ मिलाना चाहिये, यह शङ्का ठीक है परन्तु संस्कृत की वर्णमाला में 'आ' भिन्न अक्षर नहीं है किन्तु 'अ' में ही इसका समावेश किया है। 'अ' के ह्रस्व दीर्घ आदि अठारह भेद हैं, उन सब का एक ह्रस्व आकार से ही ग्रहण होजाता है, यह लघुकौमुदी पढ़ने वाले भी जानते होंगे॥

में की शक्ति को आज कल के जड़ पदार्थ वादी नहीं मानते हैं, परन्तु मैं उनसे यह बात कहता हूँ; साधारण रूप से दो अक्षरों का एक साथ उच्चारण करने पर ही उन में आप को बिलक्षण शक्ति दीखती है। देखो—किसी को लक्ष्य करके 'मूर्ख' इतना कहते ही तत्काल उसको क्रोध आजाता है और उसके नेत्र, लाल २ होजाते हैं, इसके विपरीत यदि उसको क्रोध आरहा हो उस समय कृपासागर, हुजूर, दयावान्, आदि शब्दों से उसकी प्रार्थना की जाय तो उसका क्रोध शान्त होजाता है। इस प्रकार साधारण अक्षरों के संयोगसे भी जब ऐसी शक्ति आपके देखनें में आती है तो जिन में शास्त्र विशेष शक्ति बताता है उन बीज मन्त्रों का जप करने पर इष्ट कार्य की सिद्धि क्यों नहीं होगी? अवश्य होगी, केवल जप विधिपूर्वक होना चाहिए, योग्य ढंग करके अच्छी भूमिमें बीज बोने से जैसे अन्न की उत्पत्ति अच्छी होती है तैसेही अधिकारी की शुद्ध दशा में योग्य स्थान पर और योग्य समय मन्त्र को जप करने में उत्तम सिद्धि होती है, जप करते में मन्त्र के अर्थ का चिन्तवन करना चाहिए। भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (समाधिपाद) मन्त्र का जप करना होय तो उस के अर्थ का चिन्तवन करता हुआ एकाग्र चित्त से करै, नहीं तो इधर मन्त्रका उच्चारण होरहा है और मनसे, किसी बड़े भारी शहर में जाकर स्वामी को प्रसन्न करने के लिए बढिया घोड़ा खरीदने की युक्ति चल रही है, इधर माला के कितनें दाने फिर गये इसकी कुछ सुध नहीं है, परन्तु उधर घोड़े की कीमत के रुपये ठीक २ गिनकर दिए जारहे हैं, ऐसा करने पर मन्त्र की सिद्धि कैसे हो? जहां सहस्र जप करना चाहिए तहां यदि सौही किया अथवा मन्त्र की सांगताके लिए जहां सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तहां यदि पांचही को भोजन कराया तो फल भी उतनाही कम मिलेगा और कहीं तो कुछ मिलेहीगा नहीं, यदि किसी को भात पकाना हो तों अग्नि, जल, चावल आदि सामग्री का प्रबन्ध उसको अवश्य ही करना चाहिए। इनमें से एक भी साधन नहीं होगा या एक भी साधनमें कमी होगी तो काम सिद्ध नहीं होसकेगा, अग्नि का अभाव होगा अथवा भात

के नीचे एक चिनगारी ही होगी तो भात नहीं पकेगा, तैसेही पानी बिलकुल नहीं होगा अथवा दशसेर चावलों में पावभर ही पानी पड़ेगा तो भात नहीं पकेगा, तिसीप्रकार यथोचित समय न लगाया जायगा या कर्त्ता अनाडी होगा तो भात नहीं पकेगा। सार यह है कि--छोटे बडे सबही कामों के साधन में कुछभी खराबी होने से कार्य सिद्ध नहीं होगा। फिर मन्त्र शास्त्र के प्रयोगमें दोष होनेसे कार्य सिद्ध कैसे होसकता है अर्थात् इष्ट कार्य की सिद्धि होने के लिए मन्त्रका अनुष्ठान विधिपूर्वक होना चाहिए। ओंकार का सारभूत अंश होन के कारण, राम नाम में ओंकार का सब प्रभाव आगया है और साधुसन्तों ने इसकी बहुत कुछ महिमा गाई है। सूर्य आदि सब तेज ओंकार से ही उत्पन्न हुए हैं. और वह सब उस के ही आश्रय से रहते हैं, यह बात पीछे कहही चुके हैं, इसी प्रकार रामनाम के विषय में तुलसीदास महाराज भी कहते हैं कि–'बन्दौं रामनाम रघुबर के। हेतु कृशानु–भानु–हिमकरके॥' अर्थात कृशानु–अग्नि, भानु, सूर्य, हिमकर, चन्द्रमा, कृशानु भानु और हिमकर का कारण जो रामनाम तिस को बन्दना करता हूं। रामनाम कृशानु–भानु और हिमकर कई प्रकार से हेतु है इस कारण इस चौपाई के कई अर्थ होसकते हैं। (१) पहिला अर्थ तो यह है कि राम इस पद में र,–अ,–म, यह तीन अक्षर हैं और तीनों क्रम से कृशानु, भानु और हिमकर इन तीनों देवताओं के बीज हैं, इस कारण राम यह पद उनका हेतु है, अधिक तो क्या यदि उन तीनों शब्दों का अर्थ न लेकर केवल शब्द को ही लिया जाय तब भी उन शब्दों में ऊपर के तीनों वर्ण क्रम से विद्यमान हैं और उन वर्णों के द्वारा ही उनको उन शब्दों की शक्ति

(१) कृशानु, इस शब्द में र, भानु, शब्द में अ, और हिमकर शब्द में म, यह अक्षर हैं बोलचाल में इन शब्दों के उच्चारण को लेकर यह बात है। वास्तव में देखाजाय तो कृशानु शब्द में र, स्पष्ट नहीं है किन्तु ऋ है, परन्तु कृशानु शब्द का अपभ्रंश क्रशानु लियाजाय तो र स्पष्ट दीखेगा अथवा कृशानु ऐसा शुद्धही रूप लियाजाय तो इसमें के भी ऋकार में संस्कृत व्याकरण के अनुसार रेफका अंश है ऐसा मानलेने में भी अर्थ की सङ्गति बैठ जायगी।

मिली हुई है, उन शब्दों में से तिन वर्णों को निकाल, लियाजाय तो वह शब्दही निरर्थक होजांयगे. इस कारण राम यह पद कृशानु आदि शब्दों की उत्पत्ति का कारण है। यदि कोई कहे कि–यह शब्दपाण्डित्य है, इस में अर्थ कुछ नहीं है, तो उन लोगों के समाधान के लिए दूसरा अर्थ दिखाते हैं। (२) दूसरा अर्थ यह है कि–अग्नि पाचक रूप से चार प्रकार के भोजन को पकाकर प्राणियों के शरीरका पोषण करता है सूर्य से प्रकाश मिलकर और आरोग्य की रक्षा होकर सबके व्यवहार सुन्दरता के साथ चलते हैं और चन्द्रमा से वनस्पतियों का पोषण होकर उनसे सब प्राणियों को सहायता मिलती है, इस प्रकार प्राणी मात्र की जीवन यात्रा के कारण जो कृशानु आदि तीन देवता, उनके विषे वह शक्ति रामरूप तेज से ही प्राप्त हुई है। (३) तीसरा अर्थ यह है कि–कृशानुभानु और हिमकर इन तीनों का अर्थात् तीनों कुलों को उत्कर्ष का हेतु रामनाम ही है, अग्निवंश में परशुराम उत्पन्न हुए, सूर्यवंश में दशरथ कुमार रामचन्द्र हुए, और चन्द्रवंश में बलराम हुए, इन तीनोंही का राम नाम प्रसिद्ध है। इस प्रकार रामनाम उपरोक्त तीनों कुलों के उत्कर्ष का हेतु है। (४) चौथा अर्थ यह है कि–शरीर में मुख्यरूप से इडा, पिंगला और सुषुम्ना यह तीन नाडियें हैं। नासिका के बाम ओर के छिद्र में को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उसका इडा वा चन्द्रनाडी कहते हैं। नासिका के दाहिने छिद्र में को जब श्वास पूर्ण रीति से चलता है तो उसको पिंगला वा सूर्यस्वर कहते हैं जब नासिका के दोनों छिद्रों में से एकसाथ वेग से श्वास चलता है तो उसको सुषुम्ना वा अग्निनाडी कहते हैं। यह नाडियें किन नियमों से चलती हैं इसका वर्णन स्वरोदयशास्त्र में

---

(१) यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥ अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः॥ प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ (भगवद्गीता १५ अध्याय)

२ इसी कारण ज्योतिषमें राम शब्दको तीन संख्याका वाचक माना है।

विस्तार के साथ किया है, इस समय उसके वर्णन का अवसर नहीं है । हिमकर, भानु और कृशानु इन शब्दों के द्वारा क्रम से उन तीनों नाडियोंका बोध होता है और उनका सब आधार रामरूप चैतन्य के ऊपरही है। इस प्रकार रामरूपतेज प्राणीमात्र के जीवन का कारण है और वह सर्वत्र व्यापरहा है। यदि देखाजाय तो सर्वत्र मनुष्यमात्र के नाम में "राम" यह दो अक्षर पुरे हुए हैं अर्थात् चाहे जिस पुरुष का चाहे जितने अक्षरों का नाम हो तथापि अन्त में उसकी तान इन दो अक्षरोंमें ही टूटती है इस विषय में गणित की सहायता से होनेवाला एक चमत्कार दिखाता हूं-हरएक मनुष्य को चार प्रकार के पुरुषार्थ साधने होते हैं, इस कारण उसको अपना नाम [अपने नाम के अक्षरों की संख्या] चार से गुणा करना चाहिए और वह पुरुषार्थ पंचभूतों के आश्रय से सिद्ध होते हैं, इस कारण उसमें पांच संयुक्त करदेय, पुरुषार्थों के साधनका प्रयत्न करनेमें मनुष्य को सुख दुःख, मान अपमान आदि अनेकों द्वन्द्वों से झगडना पडता है इस कारण उपरोक्त संख्याओं को द्विगुण करै। अन्त में इन सब आठ प्रकार की प्रकृति के पसारे के विवेक के द्वारा दूर करके सत्यस्वरूप में रमण करना होता है, इस कारण उपरोक्त गुणनफल में आठ का भाग देकर बाकी निकाली जायगी तो दोही शेष रहेंगे, वही "राम" यह दो अक्षर सत्य हैं। उदाहरण के लिए देखो—देवदत्त इस नामको लेलो, इसमें के अक्षरों की संख्या को चारसे गुणा करके पांच मिलानेपर इक्कीस होते हैं और इसको द्विगुण करके आठ का भाग देनेपर दोही शेष रहते हैं वही "राम" इन दो अक्षरों के दर्शक हैं। इसी प्रकार चाहे जिस नाम के विषय में देख लो यह केवल गणित का मनोरञ्जक चुटकुला कहा है, परन्तु व्यवहार में भी रामशब्द में विशेष तेज सूचित होता है। किसी मनुष्य में तेज का अभाव दिखाना होता है तो उसमें कुछ आराम नहीं है ऐसा आप कहते हैं। रामरूप शक्ति का एक प्रकार आश्रय छूटा कि—ऊपर कही हुई तीन नाडियें वन्द होजाती हैं और मरण होजाता है उस समय राम का नाम सत्य है सब मिथ्या है ऐसा

निश्चय करके सबलोग शव के पीछे २ राम नाम सत्य है ऐसा कहते हुए जाते हैं। इस रामनाम बलसे ही समुद्रमन्थन के समय उत्पन्न हुआ दुर्धर कालकूट विष शंकर ने पीलिया था। रामनाम के माहात्म्य को श्रीशंकर पूर्णरीति से जानते हैं। एक समय भोजन की तैयारी होनेपर शिवजी ने पार्वतीको भोजन के लिए बुलाया तब पार्वतीजी कहनेलगीं कि मुझे तो अभी विष्णु भगवान् के सहस्र नामों का पाठ करना है, निवट कर भोजन करूंगी, शिवजी ने इसका उत्तर दिया कि--

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तातुल्यं श्रीरामनाम वरानने॥

अर्थ–सहस्र नामों का सब सार एक रामनाम में ही भरा हुआ है, मैं अखण्ड रामनाम में ही मग्न रहता हूँ। इस प्रकार पार्वती ने शिवजी से राम नाम की महिमा सुनी, पार्वतीजी से गणेश जी ने सुनी, उस राम नाम के अवलम्बन से गणेशजी को सबसे आगे पूजन मिलता है। एक समय इन्द्रादि देवताओं में श्रेष्ठ कौन है? इस बात पर विवाद हुआ और सब अपनी ही पूजा सकल कार्यों में पहिले हो, ऐसा चाहने लगे तथा सब मिलकर निर्णय कराने के लिये ब्रह्मा जी के पास गये, उन्होंने कहा--जो ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करके सब से आगे आजायगा वही श्रेष्ठ है, उसकी ही सब से प्रथम पूजा होगी। तब तो सब ने अपने अपने वाहनों को तैयार करके ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करने का उद्योग किया, यह बात सुनतेही गणेश जी को डाह हुआ परन्तु उनकी सवारी में तो चूहे मामा ही थे, इस कारण इस विषय में जय मिलने की उनको कुछ आशा नहीं रही अतः मलिन मुख होकर एकान्त में बैठ विचार करने लगे, यह दशा देख पार्वती जी ने बूझाकि--तू खिन्न मुख क्यों होरहा है! कारण बताते ही पार्वती जी ने उत्तर दिया कि–भय न कर मैं तुझको युक्ति बताती हूँ कि–रामनाम यह ॐकार का मथा हुआ अर्थ है और ओंकार से सब ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, इस कारण मुख से रामनाम का उच्चारण करके और मन से

उसके अर्थ की ओंकार से एकता करके उस के चारों ओर तू प्रदक्षिणा कर तो एक क्षण म ही तू अनन्त ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करलेगा, यह सुनकर और इसी प्रकार करके गणेशजी उसी समय ब्रह्मा जी के पास गये और कहने लगे कि—मैंने सकल ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करली, ब्रह्मा जी आश्चर्य में होकर मन में विचारने लगे कि—यह तोंदीली मूर्ति चूहे की सवारी, सकल ब्रह्माण्ड की परिक्रमा इतनी शीघ्र कैसे होगई ? परन्तु अन्तर्दृष्टि से देखा मालूम हुआ कि—बात ठीक है और गणेश जी का बाहन चूहा ही अनन्त ब्रह्माण्ड के चारों ओर बेग के साथ फिरता रहा है। फिर बूझा कि—गणेश जी यह गुर तुमको किसने बताया ? तब गणेश जीने उत्तर दिया कि--सब योगियों में मुकुटमणि और परम रामोपासक शिवजी मेरे पिता हैं और मन्त्रशास्त्र में परम प्रवीण आदि शक्ति पार्वती जी मेरी माता हैं, इस कारण यह सब मेरे घर की ही विद्या है, हमको सीखने के लिये दूसरे के पास जाने की आवश्यकता ही क्या है ? अस्तु ! उस दिन से उनकी अग्रपूजा और भी अधिक दृढ होगई तथा आजकलभी कार्यकी निर्विघ्न सिद्धि के लिए हरएक कार्य में पहिले गणेशजी का पूजन होता है यह बात सबको विदित ही है कितनेही नए शिक्षित और अर्द्धशिक्षित कहते हैं कि--रामचन्द्र एक राजा थे और वह हमारी समानही मनुष्य थे, परन्तु यह उनका कहना भूलसे भराहै। रामचन्द्रजी यदि केवल मनुष्यही होते तो समुद्र के ऊपर पत्थरों का पुल बांधना आदि अलौकिक कार्य उनके हाथ से कैसे होते ? उनके पास बड़ी २ तनख्वाह के इंजीनियर नहीं थे. उन्होंने नलनील आदि बानरों को समुद्र के ऊपर पुल बांधने की आज्ञादी उस समय उन बानरों के लाये हुए पत्थर पहिले तो समुद्रमें डूबने लगे तब परम रामभक्त और रामनाम के माहात्म्य को जाननेवाले हनुमान जी ने तहां आकर न जानें क्या जादू सा कर दिया ? कि—उससे सब पत्थर तैरनेलगे, यदि कहो कि—वह जादू कौनसा था ? तो किन्हीं पत्थरों पर अलग २ "राम" यह अक्षर लिखकर किन्हीं पर दो २ मिलाकर वह अक्षर लि-

खकर अर्थात् एक पत्थर पर "रा" और दूसरे पर 'म' लिखकर उन पत्थरों को परस्पर मिला दिया तब तो वह सब पत्थर जल में छोडते ही तैरने लगे। आप जरा अपने हाथ से कटोरा भर जल में थोडीसी रेणुका डालिए, तो क्या वह तैर सकेगी परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में मन्त्र-शास्त्र आदि का प्रचार बहुत हुआ है, अतः यन्त्र विद्या में प्रवीण आजकल का कोई बडाभारी विद्वान्,हनुमानजीके मन्त्रशास्त्र के किनारेसे भी समता रखनेवाला कोई यन्त्र बनासकता है क्या? अथवा आजकल के चक्रवर्ती राजाओं में भी कहीं ऐसी सामर्थ्य देखने में आती है क्या? जब वह शक्ति कहीं दीखतीही नहीं तो श्रीरामचन्द्रजी को लोकोत्तर अथवा दिव्य मनुष्य [ईश्वर] थे ऐसा कौन कहेगा? अर्थात् वह यद्यपि मनुष्य की समान देखते थे तथा वह साक्षात् परमात्माही अवतरे थे, इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। "अवतार" शब्द का अर्थ है नीचे उतरना। वेदादिकों को भी अगम्य और अनिर्वचनीय अपने परमोन्नत रूपसे परमेश्वर ने भक्तजनों के कल्याण के लिए एक साधारण मनुष्य का सा रूप धारण किया, इसको परमेश्वर का अवतार कहते हैं। जो कोई उनके नाम का स्मरण करके एकाग्र चित्त से उनका ध्यान करता है उसके ऊपर वह प्रसन्न होकर भक्तकी इच्छा के अनुसार दर्शन देते हैं। जैसे वायु के स्पन्द और निःस्पद दो रूप हैं अथवा अग्नि के व्यक्त और अव्यक्त दो रूप हैं-(चौपाई) एक दारुगत देखिए एकू। पावक युग सम ब्रह्म बिवेकू॥ अर्थात् काष्ठ आदि में अग्निका अव्यक्त रूप है और व्यवहार आदि में स्पष्ट देखने में आनेवाला जो अग्नि है वह अग्नि का व्यक्तरूप है। इसीप्रकार ईश्वर भी साकार और निराकार अथवा सगुण और निर्गुण यह दो रूप हैं।कोई परमेश्वर क सगुणरूप की भक्ति करते हैं। और कोई निर्गुणरूप में मग्न रहते हैं। गुरु रामानन्दजी श्रीरामचन्द्रजी के साकाररूप के उपासक थे और कबीर निराकाररूप के उपासक थे सार यह है कि चतुर दुभाषी जैसे अपना अभिप्राय न्यायाधीश को अङ्गरेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि उसकी इच्छित भाषा में समझा देता है तैसेही परमेश्वर अपने भक्त को

उसकी इच्छानुसार रूप में दर्शन देकर उसके मनोरथ को पूरा करते हैं पहिले स्वायम्भुव मनु और उनकी स्त्री शतरूपा ने परमात्मा का दर्शन पाने के लिए सहस्रों वर्ष तक वन में रहकर तीव्र तपस्या करी तब भगवान् ने उनको चतुर्भुजी पीताम्बरधारी रूप से प्रत्यक्ष दर्शन देकर वर मांगने के लिए कहा—तब उन दोनों ने कहा कि—हमको और कुछ नहीं चाहिए आप इसी रूप में हमारे गर्भ से प्रकट होकर हमारे सकल मनोरथों को पूरा करिए, भगवान् ने भक्तवत्सल होने के कारण, उनके मांगे हुए वरको देकर, "तुम्हारे ऐसाही पुत्र होगा" ऐसा कहते हुए उनको विश्वास दिलाया। फिर त्रेतायुग में वह दोनों दशरथ और कौसल्या हुए और उनके उदर में भगवान् श्रीरामचन्द्ररूप से अवतरे, यह प्रसिद्ध ही है जब कौसल्या के उदर में प्रविष्ट हुए थे उस समय कौसल्या के गर्भ के सब चिह्न यद्यपि अन्य साधारण स्त्रियों की समानही प्रतीत होते थे परन्तु वास्तव में परमात्माका अन्य लोकों की समान गर्भवास से सम्बन्ध नहीं था भगवान् के सब अवतार अयोनि संभवही थे, उनके साथ गर्भवास का अथवा रजोवीर्य का किसी प्रकार का संबन्ध नहीं था, केवल उस समय कौसल्या के शरीर में परमात्मा का तेज फैलरहा था और उसके भीतर बाहर सर्वत्र रामरूप दीखता था, लौकिक रीति के अनुसार नौ महीने पूरे होतेही पहिले करेहुए संकेत के अनुसार भगवान् श्यामसुन्दर पांच वर्ष के बालक की मूर्त्ति बनकर कौसल्या के सामने आकर खडे होगए, उस मूर्त्ति को देखकर कौशल्या न प्रार्थना करी कि—इतने बडे रूप से लोग आपको मेरा पुत्र नहीं कहेंगे और उलटी हंसी उडावेंगे, इस कारण लोक व्यवहार के अनुसार बालक का रूप धारण करिए। तब भगवान् ने भक्त का मनोरथ पूरा करने के लिए तत्काल बालक का रूप धारण किया और मनुष्य की समान सब लीलायें करके दिखाई। कोई २ कहते हैं कि यह सब पुराणों की गप्पे हैं और पुराण थोड़े ही दिनों के बनेहुए हैं और कहीं तो उन में वृथा अतिशयोक्ति ही लिखी हैं। परन्तु यह उनका कहना ठीक नहीं है क्योंकि अथर्ववेद प्रपाठक ७ में 'ऋचः

सामानि छन्दांसि जज्ञिरे पुराणं यजुषा सह।' इसप्रकार ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद के समानही पुराणों की उत्पत्ति कही है। इसके सिवाय वेदों में परमात्मा के अवतारों का भी उल्लेख किया है, उसमें से कुछ प्रमाण दिखाकर आज के व्याख्यान को समाप्त करता हूँ। ऋग्वेद मंडल ६ सूक्त ४६ मन्त्र १८ में परमेश्वर के अवतार के विषय में साधारणरूप से कहा है 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।' अर्थात इन्द्र कहिए षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान वत्सलता को प्रकट करने के लिए अपनी मायारूप शक्ति के द्वारा अनंतों रूप धारण करते हैं, जैसी २ भक्त की भावना होती है और जिस समय जैसी आवश्यकता पड़ती है, तैसे २ ही भगवान् के अवतार होते हैं। पीछे एक व्याख्यान में द्रौपदी की लज्जा रखने के लिए भगवान् ने वस्त्र रूप धारण किया, यह बात कहही चुके हैं। नृसिंहावतार के विषय में यह प्रमाण है—"प्रतद्विष्णुः स्तवतेवीर्येण मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठाः॥" (ऋ० मं० १ अध्याय २१) वामनावतार के विषयमें प्रमाण है कि— 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' (ऋग्वेद) इसी प्रकार रामावतार के विषय में—'भद्रो भद्रया०' इत्यादि सामवेद के उत्तर आर्चिक अध्याय १९ में लिखा है और ऋग्वेद मण्डल ४ में कृष्णावतार के विषय का उल्लेख है। शेष अवतारों के विषयमें भी प्रमाण दिखाये जाते, परन्तु अवसर नहीं है और वेदों में अवतारों का उल्लेख होने के विषय में विश्वास होने के लिए यह दिखाए हुए प्रमाण ही पर्याप्त हैं। आजके व्याख्यान से अवतारोंका क्या प्रयोजन है? रामनाम की कैसी महिमा है? उसमें कैसी अद्भुत शक्ति है और वह कितना सहल तारकमन्त्र है? यह सब बातें आपके ध्यान में आहीगई होंगी, अतः परम पवित्र वस्तुओं में पवित्र, मङ्गलों में मंगल रामनाम का एकबार सब लोग मिलकर उच्चस्वर से कीर्त्तन करो और उसको अखण्ड हृदय में धारण करो।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

प्रिय मित्रो ! आज दश दिन तक सन्ध्या. प्राणायाम, पुनर्जन्म और श्राद्ध आदि भिन्न २ विषयोंके सम्बन्ध में, अनेकों बातें मैंने आप लोगों को अर्पण करीं, मुझे आशा है कि आप उनमें के दोषों को त्यागकर नीर क्षीर न्याय से हंस की समान गुणों को स्वीकार करेंगे। आप सब महाशयों ने दशदिन तक घरके आवश्यक कार्यों को त्यागकर यहां आनेका कष्ट उठाया और सावधान चित्त से व्याख्यान सुनने की कृपा की, इसके लिए मैं आप सब महाशयों को धन्यवाद देकर अब बिदा होता हूँ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

स्वामी हंसस्वरूप।

❀ भक्ति ❀

जीवात्मा की सारी यात्रा में—समय के आदि से लेकर इस समय तक जब कि जीवात्मा को "एकमेवाद्वितीयम्ब्रह्म" का साक्षात् अनुभव न होजावे—किंचित् घटनायें ही ऐसी आवश्यक और स्मरणीय होती हैं जैसी कि ईश्वर की ओर सच्ची भक्ति का प्रादुर्भाव होना। यह भक्ति सारे मनुष्य स्वभाव को बदल देती है, जब, मनुष्य इसको प्राप्त करलेता है सच मुच उसका "पुनर्जन्म" होता है यह जन्म माता के गर्भ पाप से, और शोक के असत्य जीवन में नहीं होता, वरञ्च उस बृहद् और सत्य जीवन में उसका जन्म होता है जिसमें हम सब को एक न एक दिन जाना पड़ेगा। और सब कर्मों से बढकर ईश्वर के चरणों में सत्य प्रेम ही मनुष्य को द्विज बना देता है। जब एकबेर मनुष्य अपने कई जन्मों के पुण्य फल से इस दुर्लभ पदार्थ भक्ति को प्राप्त कर लेता है, तो उसके जीवन का अर्थ कुछ और ही होजाता है, यह संसार प्रेम के प्रभाव से "स्वर्ग" बन जाता है अब वह वैसा मनुष्य नहीं रहा जैसा वह पहले था, परम प्रेम मय का साक्षात्कार उसके स्वभाव को बदल कर

उसको नरेश्वर (Good man) बना देता है, हरएक पदार्थ जो वह देखता है और जो वह सुनता है सब उसकी दृष्टि में नवीन और सुन्दर रूप धारण करते हैं, उसके वास्ते सब सुखदायक ही हैं और वह प्रेम के पिंगुरे में झूलता रहता है, जब तक कि वह अपने आपको उस परम पुरुष में लीन करता है जिसका आनन्द और गौरव बड़ी २ उपनिषदें भी शब्दोंसे लिखनेका यत्न निष्फलही करती हैं।

सच्चा भक्त कोई हजारों में एक होता है। हमारे भारत जैसे धार्मिक देश में भी सच्चे भक्त गिनती के ही हुए हैं, परन्तु जब हम देखते हैं कि भक्ति क्या है तब हमको प्रतीत होजाता है कि भक्त इतने थोडे क्यों हैं भक्ति वह प्रेम है जो पण्डित लोग ईश्वर के साथ रखते हैं और जो इतनाही अचल तथा दृष्ट होता है जितना वह प्रेम जो अविवेकी को इन्द्रियों के नश्वर पदार्थों से होता है महर्षि नारद कहते हैं:—

सात्वास्मिन्परमप्रेमरूपा ॥ २ ॥ अमृतरूपाच ॥ ३ ॥ यल्लब्ध्वापुमान्सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्योभवति ॥ ४॥ यत्प्राप्यनकिंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टिनोत्साहो भवति ॥ ५ ॥ यज्ज्ञात्वामत्तो भवतिस्तब्धो भवति आत्मारामो भवति ॥ ६ ॥ सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥ ७ ॥ भक्ति अ० ॥ १ ॥

इसके मिलाप में ही भक्त को सुख है, उसका विस्मरण होजाने से उसको बडा दुःख होता है। एक महात्मा ने कहा है कि "जिन दिनों में ईश्वर का गुण नहीं गा सका, उन दिनों में यथार्थ में मैं जीवित न था" भक्त शिरोमणी पह्लाद कहते हैं।

कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु, रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्रयत्र। जातस्य मेभवतुकेशवतेप्रसादात्त्वय्येव भक्तिर-

चलाऽव्यभिचारिणीं च। नाथयोनिसहस्रेषु येषुयेषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वचला भक्तिरुच्चैरस्तु सदा त्वयि॥

भक्त का सो प्रेम ईश्वर के साथ कितनाही होता है, इसका नमूना उपनिषदों में मिलता है। यम नाचिकेता को कहता है–

शतायुषः पुत्र पौत्रान् वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहरिण्यमश्वान्। भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥ महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधिकामानां त्वां कामभाजं करोमि। येये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाञ्छन्दतः प्रार्थयस्व॥ इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व॥ कठोपनिषद॥

हममें से बहुतों को इससे भी न्यून पदार्थ मदमत्त करदेते, परन्तु सच्चा भक्त नाचिकेता क्या उत्तर देता है, वह कहता है 'वरस्तु मे वरणीयः स एव' वही ब्रह्मज्ञान का वर दो, यह उसका उत्तर है। सच्चे भक्त का यह उदाहरण है, ऐसे नर शार्दूलों की महिमा भगवान् श्रीकृष्ण यों वर्णन करते हैं यथाः–

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ ॥९॥२९॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥९॥२२॥ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः। अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥ तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसाग-

रात्। भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसिमय्येव अत ऊर्द्ध्वं न संशयः॥ १२ ॥ ॥ ६७, ८ ॥

मनको सांसारिक पदार्थों से हटाकर ईश्वर की ओर लगाने का भक्तिही सबसे अच्छा उपाय है हम अज्ञान के अन्धकार कूप में गिरे हुए हैं और सदैव अपने आपको इन काम क्रोधादि बगल के शत्रुओं से (traitors in the camp) यथार्थ मार्ग से च्युत कराते हैं, कैसे यह चञ्चल मन दिनरात निरन्तर निकम्मे और अप्रयोजनीय कामों में घूमता फिरता है। मनकी मदमत्त और विक्षिप्तोंकी न्याईं चंचलता पर विचार करने से बड़ाही दुःख होता है विशेषतः जब हम इस बात का विचार करते हैं कि हम इसके दुष्ट और अनर्थकारी स्वभाव को रोकने में कैसे समथ हैं। शङ्कर स्वामी कहतेहैं कि "मृग, हस्ति, भृङ्गी, मच्छी और मधुमक्षि यह पांचों एक २ इन्द्रिय को पूर्ण करने में मारे मारे फिरते हैं तो मनुष्य जिसके पांच इन्द्रिय हैं उसका क्या कहना है। यही मन यदि हम खुला छोड़दें तो हमारा परम शत्रु है. जब इसको वश में करलें तो यह हमारा परम मित्र है यथा 'मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' एक दक्षिणी महात्मा कहते हैं 'ओह मन तू क्यों इतनी चञ्चलता से पड़ा भटकता है, कई बार मैंने तुझको समझाया है कि यह अपनी चञ्चलता छोड़ दे उसकी प्राप्ति का यत्न कर जिसको न तो शास्त्र का पढना और न हठ योग का करना और नहीं वेदोंका पढना प्राप्त करसकता है, इस अपने निरर्थक भ्रमण को छोड़दे, नहीं तो मैं तुझे मारडालूँगा। और जब मनको यथार्थ रीति से जीत लेनेपर और गुरु कृपा से उसने सत्य का अनुभव करलिया, तो कहता है ओ यार मेरे मन! तूनेही मुझको मेरी वास्तविक दशा जताई और मेरी यथार्थ दैवी प्रकृति का बोध कराया, तूही मेरा सच्चा मित्र निकला है तूही मेरा गुरू है और तूही मेरे

जीवन का मोक्ष होता है 'भक्ति का लाभ यही है कि यह मनको लोभ देकर उसको इन्द्रिय के क्षुद्र भोगों की आसक्ति से मुक्त कराके सर्व जगत् कारण और प्रेममय जगतपिता में उसकी आसक्ति बढाता है, सब से सुगम यथार्थ और साथ ही सबसे अच्छा उपाय मनको लोभ देनेका यह भक्तिही है, जिससे मन बाह्य बातों से हटकर सर्वज्ञान के आधार ब्रह्म सच्चिदानन्द में अपना आश्रय लेता है।

मनुष्य योग के पीछे पड़ा फिरता है। जब इन अपने इन्द्रियों को प्रसन्न करते २ प्रकृति कुछ रुकावट करती है तो उसको ज्ञात होजाता है कि जो बस्तु पुण्य है वह हमारे सुख से कुछ पृथक् वस्तु है, सो अन्त में अपने स्वर्गीय पिता से सहायता मांगता है यहही भक्ति का प्रथमांकुर है यह आश्रय का खयाल (Feeling of dependence) शनैः २ प्रेम में बदल जाता है और भगवान् श्रीकृष्ण के बचनानुसार 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति सः महात्मा सुदुर्लभः ॥' बहुत जन्मों के पश्चात् भक्त को ईश्वर का साक्षात्कार होजाता है। उस एक एक ईश्वर को ही जगत् के सारे दृश्योंमें देखना उसीके अनन्त रूपों की शोभा में मग्न रहना और उस सत्य की प्राप्ति मेंही यत्न करते रहना इसीका नाम भक्ति है। महर्षि नारद ने क्याही सत्य कहाहै, गुङ्गेकीरसना की नाईं प्रेम स्वभाव भी अकथनीय है, यह तीनों गुणों से रहित है, वासना रहित है, यह सदैव बढता है भक्ति को प्राप्त करके भक्त उसी को देखता है उसी को सुनता है उसी का कथन करता है और उसी का विचार करता है वही उपासक बड़े हैं जिनका संसार में भक्ति की प्राप्ति ही एकमात्र लक्ष्य है, गद्गद वाणी से और खडी रोमावली से और रोते २ वह भक्ति का एक दूसरे से कथन करते हुए और इस प्रकार अपने कुटुम्बों को संसार में पवित्र करते हैं तीर्थों में तीर्थों की शोभा का कारण ऐसे ही मनुष्य हैं, उनके प्रभाव से सब कर्म्म शुभ हैं, और पुस्तक धार्मिक पुस्तक हैं वह दैवी शक्तियों का आधार हैं, उनके पितृवर्ग प्रसन्न होते हैं, देवता प्रसन्न होकर नृत्य करते हैं पृथ्वी के वह रक्षक हैं क्योंकि

वह प्रभु के अपने हैं, इस वास्ते इनमें वर्ण भेद, विद्या भेद, जन्म कर्म रूप धन किसी का भेद नहीं होता।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, बहुत से मनुष्य नास्तिक हैं। मुझे इस बात से आनन्द है कि आज कल पश्चिम में एक और प्रकार के नास्तिक उत्पन्न हुए हैं जिनको पदार्थ बादी (Menitestations) कहते हैं,क्योंकि वे सच्चे नास्तिक हैं। आजकल के उन धार्मिक नास्तिकों से यह अच्छे हैं जो अपने धर्म्माचरण में तो सच्चे नहीं हैं परन्तु धर्म्म की दुहाई देते फिरते हैं, जो धर्म्म के वास्ते लडने को तो कटिबद्ध हैं परन्तु उसके अनुष्ठान का उसके यथार्थ ज्ञान का कभी यत्न नहीं करते। "ईसामसीह कहते हैं" मांगो और तुमको प्राप्त होगा, जिज्ञासा करो और वह मिलजायगा "द्वारको खटखटाओ और यह खुलजायगा" एक शिष्य गुरू के पास गया और कहा भगवन् मुझे धर्म्म का उपदेश करो, गुरू ने मुसकराकर शिष्य की ओर देखा और कहा कुछ नहीं, शिष्य प्रति दिन गुरू के पास आता और धर्मोपदेश सीखने की विनती करता। एक दिन जब बहुत घाम था, वह गुरू के पास गया, तो गुरू ने कहा कि नदी तक हमारे साथ चल और वहां चलकर गोता लगा शिष्य ने जाकर गोता लगाया पीछे गुरू ने लगाया और शिष्य को बलात् जल के नीचे दबाये रक्खा, जब शिष्य पानी के नीचे से बाहिर निकलने का बहुत यत्न करने लगा, तो गुरु ने छोड दिया, जब शिष्य बाहर आया तो गुरू ने पूछा कि जब तू जल के नीचे था, तो ज्यादा किस वस्तु की आवश्यकता थी? शिष्य ने उत्तर दिया खुली पवन में एक श्वास की। (गुरू) क्या तुम ईश्वर की भी इतनी ही लालसा करते हो और तेरी लालसा इतनी ही है, तो ईश्वर एक क्षण में प्राप्त होजायगा, जबतक चित्त में ऐसी लालसा नहीं है, धर्म नहीं मिलसकता, चाहे कितनाही अपनी बुद्धि, शास्त्र और कर्मकाण्ड से यत्न करो, जब तक यह तृष्णा यह लालसा तुम्हारे चित्त से नहीं जायगी, तुम कुछ नास्तिक से अच्छे नहीं हो अन्तर केवल इतना है कि नास्तिक का विश्वास पक्का है और तुम्हारा कच्चा है॥